आधुनिक काव्य-कुंज

संपादक

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर



शक संवत् १८९४

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशक
सुधाकर पाण्डेय
प्रधानमंत्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

प्रथम संस्करण ३१०० : शक संवत् : १८९४ (सन् १९७२)
मूल्य २.७५

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

प्रकाशकीय

श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' हिन्दी के यशस्वी कवि और प्राध्यापक के रूप में प्रतिष्ठित है। सम्मेलन ने उनसे स्नातक-कक्षाओं के पाठ्यक्रम के अनुरूप एक आधुनिक हिन्दी-काव्य-संकलन तैयार करने का निवेदन किया था। श्री 'अंचल' ने आधुनिक हिन्दी-काव्य के प्रतिनिधि कवियों की महत्त्वपूर्ण काव्य-कृतियों का सुन्दर संकलन प्रस्तुत करने में जिस तत्परता का परिचय दिया है, उसके लिए हम आभारी है। हिन्दी-काव्य की ऐतिहासिक प्रगति का सांगोपांग अध्ययन प्रस्तुत करने वाली भूमिका के कारण यह संकलन और भी उपयोगी बन पड़ा है। अधुनातन काव्य प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाली उत्तमोत्तम कविताओं को इस संकलन में स्थान दिया गया है।

विश्वास है कि यह संकलन स्नातक कक्षाओं के हिन्दी छात्रों एवं काव्य-रसिकों के लिए सर्वथा उपादेय सिद्ध होगा।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

सुधाकर पाण्डेय
प्रधानमंत्री

●

भूमिका

हिन्दी काव्य की ऐतिहासिक भूमिका

हिन्दी कविता की अविराम धारा हजार वर्षों से प्रवाहित है। विकास के विभिन्न युगों का उतार-चढ़ाव हिन्दी कविता की इस लम्बी परम्परा में स्पष्ट है। वंशी की कोमल तान से लेकर शंख के ओज तक की स्वर-साधना हिन्दी कविता में रही है। हिन्दी कविता का जन्म भारतीय इतिहास की प्रादेशिक ह्रासोन्मुख परिस्थितियों में हुआ। हिन्दी के आदिकाल के अन्तर्गत हमें भाषा के दो रूप परिलक्षित होते है—अपभ्रंश और प्राचीन भाषायें। इन दोनों उद्गमों से साहित्य की जो धाराएं विकसित हुई उनमें बहुत अधिक साम्य है, फिर भी इनके प्रेरणास्रोतों और विस्तार में पर्याप्त अंतर है।

आदिकाल के अपभ्रंश और हिन्दी साहित्य के स्वर उस युग के संस्कृत साहित्य के स्वर से मेल नहीं खाते, उसके मूल प्रेरणास्रोत भी भिन्न है। उसकी अभिव्यंजना शैली, उसके प्रतिमान और उपमान संस्कृत साहित्य मे प्रयुक्त शैली से भिन्न है। यदि हम एक सूत्र में संस्कृत साहित्य और हिन्दी साहित्य के मूलभूत अंतर को स्पष्ट करना चाहें तो कह सकते है कि जहां आदियुगीन (हिन्दी) संस्कृत साहित्य स्वीकार और समाधान का साहित्य है वहां आदि-युगीन अपभ्रंश और हिन्दी साहित्य विरोध और विद्रोह को स्पष्ट मुखरित करता है। उसमें नवीन जन-कंठ स्पष्ट रूप से प्रतिध्वनित होता है।

६४७ ई० में हर्ष की मृत्यु के पश्चात् केन्द्रीय राजशक्ति समाप्त हो गई और उसके साथ ही वे सब परम्पराएं क्षीण होने लगी जो पूर्ववर्ती गुप्तयुग में अनेक प्रकार से मध्यदेश की राष्ट्रीय शक्ति को विकसित करने मे समर्थ हुई थी। समस्त देश अनेक छोटे-छोटे राज्यों मे इस प्रकार विभाजित हो गया कि राजनीतिक चेतना का सार्वभौमिक तत्व ही नष्ट हो गया। एक नये क्षत्रियवंश

का आविर्भाव इन विभिन्न राज्यों में हुआ। यह वर्ग सामंतीय वर्ग के रूप में प्रसार पा रहा था। प्रत्येक राजा का अपना छोटा-सा दरबार होता था और उसमें चारण या भाट प्रशंसक कवियों के रूप में उपस्थित रहते थे। इन चारणों और भाटों के द्वारा हमें वीर-दर्प और शौर्य का साहित्य प्राप्त होता है। इस साहित्य में राजपूत जाति के संस्कार पूर्ण रूप से सुरक्षित हैं। परन्तु इसमें कल्पनामूलक ऐश्वर्य और अतिशयोक्ति की प्रधानता है। अधिकांश वीर काव्य छप्पय छंद में सामने आता है। इस वीर काव्य में डिंगल भाषा का प्रयोग हुआ है। विद्वानों का विचार है कि डिंगल भाषा सामान्य बोल-चाल की भाषा नहीं है वह साहित्यिक भाषा है और इसमें अनेक भाषाओं के उपकरण सम्मिलित रहे हैं। जहां चारण कवियों ने डिंगल भाषा का प्रयोग किया है, वहां भाट कवियों ने प्रादेशिक बोलियों को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है।

इस समस्त साहित्य के पीछे इतिहास की सुरक्षा की प्रेरणा है। इस कारण उसमें अनेक प्रकार की काल्पनिक वंशावलियों और आश्रयदाताओं के युद्धों को अत्यन्त अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से उपस्थित किया गया है। डिंगल का यह साहित्य उस युग के आदर्श-बलिदान और राजपूत जाति के वीर-दर्प से शोभित है पर इसमें इस युग के राजनीतिक शक्ति के ह्रास के अनेक चिह्न भी स्पष्ट रूप से उपलब्ध हो जाते हैं।

परन्तु आदिकालीन साहित्य के मूल में राजनीतिक प्रेरणा की अपेक्षा सामाजिक और धार्मिक प्रेरणा अधिक महत्वपूर्ण है। इन प्रेरणाओं का संबंध जनमानस से है। ६०० ई० के बाद ब्राह्मण धर्म के कर्म और वर्णाश्रम के विरोध में अनेकानेक आंदोलनों का सूत्रपात होता है। विदेशी जातीय तत्व वर्णाश्रम व्यवस्था को बहुधा अस्वीकार कर देते हैं। भगवान बुद्ध से लेकर नागार्जुन तक ब्राह्मण विरोधी स्वर की एक स्वतंत्र परम्परा बौद्धधर्म के भीतर परिलक्षित होती है। जैन धार्मिक रचनाओं में भी ब्राह्मणधर्म और कर्मवाद के प्रति विरोधी स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ता है, यद्यपि वह उतना शक्तिशाली नहीं है।

आदियुग का अधिकांश साहित्य वर्ग-साहित्य है। डिंगल साहित्य वर्ग और सामंतीय राज्याश्रयों में पल्लवित भाट साहित्य समुदाय की उपज है। इसी प्रकार सिद्ध साहित्य पूर्वी प्रदेशों के बौद्ध सम्प्रदायों और नालंदा, विक्रमशिला विश्वविद्यालय के आचार्यों की देन है। जैन साहित्य पश्चिमी भारत में प्रमुख रूप से राजस्थान के वैश्य सामन्त और गुजरात के सोलंकी राजाओं के आश्रय मे रचा गया।

आदि युग में साहित्य का जो स्वर सबसे सशक्त है वह विभिन्न धार्मिक आन्दोलनों के भीतर से आता है। ये आन्दोलन अन्तःप्रेरणामूलक हैं और एक प्रकार से रहस्यवादी आन्दोलन कहे जा सकते हैं। वज्रयान में भगवान बुद्ध के ऐतिहासिक और वैयक्तिक अस्तित्व के विरोध में ऐसे सूक्ष्म बुद्ध की कल्पना की गई जो प्रत्येक आत्मा में निवास करता है। व्यक्तिगत साधना के द्वारा ही इस अन्तरंग परमशक्ति तक पहुँचा जा सकता है। इसी कारण वज्रयान के अन्तर्गत योग और साधना स्वीकृत हुई है। इस परम्परा का अधिक विकसित रूप हमें गोरखनाथ और नाथ सम्प्रदाय के अन्य कवियों में मिलता है।

संभवतः उस युग मे ऐसे अनेक आन्दोलनों का जन्म हुआ जो ब्राह्मण-धर्म की मूर्तिपूजा और उसके कर्मकाण्ड के विरोध में विशुद्ध आत्मानुभूति को महत्व देने में समर्थ हुए। इन नये साधकों के पास साहित्यशास्त्र की मान्यताएँ नहीं थीं। उनमे से अधिकांश संस्कृत-पंडित भी नही थे—उन्होंने लोक-वार्ता और लोकगीतों को अपने साहित्य का आधार बनाया और लोक-जीवन के उपमानों और प्रतीकों से अपने साहित्य को समृद्ध किया इस समस्त धार्मिक साहित्य मे साहित्यिकता का रूप अप्रधान है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल उसे साहित्य की कोटि मे रखने को तैयार नहीं है। परन्तु उस धार्मिक साहित्य में ही वे अनुभूतियां सुरक्षित है जो परवर्ती युग मे संतों और भक्तों के काव्य को पल्लवित-पुष्पित कर सकी हैं। एक प्रकार से हम आदिकाल की इस परम्परा को ही सबसे अधिक शक्तिशाली और दीर्घजीवी परम्परा कह सकते हैं।

आदियुग के अन्तिम वर्षों में इस्लाम के आक्रमण के कारण नवीन स्थितियां

आई। फलस्वरूप हमे जहां एक ओर अमीर खुसरो का मनोविनोदी काव्य प्राप्त होता है जो पहेलियों, मुकरियों के रूप में भाषा-परिवर्तन के साथ आज तक चला आ रहा है, वहीं दूसरी ओर वैष्णव भक्ति के नवीन आन्दोलन और नये राजकीय वातावरण के फलस्वरूप पूर्वी हिन्दी प्रदेश से हमे विद्यापति की पदावली प्राप्त होती है।

ये अन्तिम सन्दर्भ हमे स्पष्ट रूप से बतलाते है कि भावधारा मे परिवर्तन उपस्थित हो चुका है और एक ऐसी नयी साहित्यिक धारा आनेवाली है जो मनुष्य की रागात्मक प्रवृत्तियों को और साहित्य-शास्त्रीय मान्यताओं को आत्मसात करने मे प्रयत्नशील है। वास्तव मे आदियुग के अन्त होते-होते मध्य-देश की धर्म साधना और साहित्य का रूप इतना बदल गया है कि हमें इस युग के आरम्भ की चेतना बहुत अल्पमात्रा में प्राप्त होती है।

मध्यदेश में भक्ति का उन्मेष 'बिजली की चमक की भांति अचानक' कैसे हुआ इस पर विद्वानो के मतो मे एकता नही है। ग्रियर्सन उसे ईसाई प्रभाव का परिणाम घोषित करते है, डा० ताराचन्द्र अरबो की देन स्वीकारते है और विद्वानो का एक वर्ग उसे इस्लामी निरकुशता की प्रतिक्रिया मानता है। इस्लामी प्रतिक्रिया को हम मात्र उद्दीपक के एक रूप मे स्वीकारते है। भक्ति का चरम उन्मेष ऐतिहासिक एव सास्कृतिक परम्परा की भव्य परिणति है। राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक विश्रृंखलता ने इसमे पूर्णाहुति दी।

दक्षिण की भक्तिधारा को रामानन्द के हाथो उत्तर मे फलने-फूलने का अवसर मिला। पाचवीं-छठी शताब्दी से नवी शताब्दी तक अलवार भक्तो के बीच दक्षिण मे भक्तिमार्ग को चरम उत्कर्ष मिला। रामानुज, मध्व, निम्बार्क आचार्यो ने अलवारो के प्रपत्तिपूर्ण एकातिक भक्तिभावना को शास्त्रीय बना दिया और उसे वेद प्रतिपादित ज्ञान और कर्म से अनुस्यूत किया। उत्तर भारत में इस परम्परा को रामानन्द ने पुरस्सर किया। महाराष्ट्र के सत नामदेव ने उत्तर भारत मे भक्ति के प्रचार मे रामानन्द का सहयोग दिया। वल्लभाचार्य और चैतन्यदेव ने भक्तिधारा को उत्कलित करने मे महत्वपूर्ण-योग दिया है।

इन आचार्यों के सगठित प्रयासों के फलस्वरूप भक्ति के विविध रूप हिन्दी कविता मे परिलक्षित होते है। कालक्रम की दृष्टि से निर्गुण काव्यधारा के कवि हिन्दी भक्तिकाव्य के अग्रदूत है। सन्त साहित्य की आरम्भिक भूमिका हमें पूर्ववर्ती साहित्य मे उपलब्ध होती है। सन्त कवियो ने उस भूमिका को भव्य नूतन परिणति दी है। सामान्य जीवन की स्वाभाविक भाव-भूमि पर धर्म की स्थिति उन्होंने स्वीकारी है—लोकभाषा में उसे व्यक्त किया है। कबीर इसके मूर्धन्य, सर्वश्रेष्ठ, क्रांतिदर्शी कवि हैं। सारी प्रेरणाओं और परिस्थितियों का युगानुकूल आकलन कबीर की सबसे बड़ी विशेषता है। सन्तों ने धर्म को व्यावहारिकता का बाना पहनाया। धर्म के सहज और स्वाभाविक रूप का आग्रह उन्हें विशेष प्रिय था। धर्म और जीवन की सहज अभिन्नता की घोषणा उन्होंने की। जीवन-सत्य की सीधी-सादी अभिव्यक्ति उन्होंने जनभाषा मे की है।

निर्गुण धारा की दूसरी शाखा सूफियों की है। सूफी साहित्य का निर्माण मुसलमान कवियों ने किया है। इस्लामी आक्रमण के साथ अनेक सूफी दरवेशों का भारत आगमन हुआ। प्रेममार्गी सूफी कवि प्रचारक नही कहे जा सकते। इनकी परिधि सीमित है। चिन्तन और वातावरण मे विदेशी होने के बावजूद सूफी साहित्य में भारतीयता बड़ी मात्रा मे परिलक्षित होती है। इनके दार्शनिक चिन्तन में वेदांत की अद्भुत झलक है। इनकी भक्ति में वैष्णव भक्ति का व्यापक रूप देखा जा सकता है। प्रपत्ति और प्रेमभावना से सूफी कवियो का हृदय आपूरित है। सूफी कवियो ने हिन्दू लोक जीवन की कथाओं में अपने सिद्धान्तों की काव्यमयी प्रतिष्ठा की है।

वैष्णव आन्दोलन की महत्वपूर्ण उपलब्धि राम-भक्ति शाखा के रूप मे इस युग में हमें परिलक्षित होती है। राम को ईश्वर के अवतार रूप मे ग्रहण किया गया, लोकरक्षक के रूप मे ग्रहण किया गया और लोकरक्षक के रूप में उनकी भक्ति की गई। भक्ति की यह शाखा प्राचीन वर्ण-व्यवस्था एवं रीति-नीतियों को स्वीकार करके उसमे नये प्राण की प्रतिष्ठा करती है। आदर्शो मे गंगा जैसी पावनता एव भक्ति-भावना में हिमालय की सी दृढ़ता दिखाई

देती है। जनभाषा को साहित्यिक-रंग देने में यह शाखा विशेष सक्रिय रही है। भक्त हृदय का उल्लास रचनाओं में द्रष्टव्य है। प्रबन्ध और मुक्तक काव्य मे रामभक्ति-शाखा के कवियों ने अपनी भावना की अभिव्यक्ति की है। इस शाखा के अन्यतम कवि तुलसीदास हिन्दी के अवतारी कवि माने जाते है। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व इतना महान है कि उन्होंने रामभक्ति के प्रचार और प्रसार में जो सफलता पायी है वह किसी संगठित सम्प्रदाय को भी नही मिल सकी। तुलसी का उद्देश्य सामयिक और जर्जर जीवन मे प्राण-शक्ति फूककर उसे प्रगति-पथ पर अग्रसर करना था। तुलसी पुरातन व्यवस्था को पुनर्जीवित करने के पक्ष में थे। राम के रूप में 'रामचरितमानस' मे परम-ब्रह्मत्व और पूर्ण मानवत्व की प्रतिष्ठा की गई है। जनकल्याण की भावना से तुलसी का साहित्य ओतप्रोत है। इसके साथ ही तुलसी मे काव्य-सौंदर्य का उदात्त उत्कर्ष भी उपलब्ध होता है। "युगपुरुष की दूरदृष्टि, दार्शनिक की गहरी पैठ और सच्चे कवि की रससिद्ध वाणी से सम्पन्न यह अकेला कवि ही भक्तिकाल को हिन्दी का स्वर्णयुग सिद्ध कराने में समर्थ है।" युग की सम्पूर्ण साहित्यिक शैलियो को तुलसी मे अपूर्व उत्कर्ष मिला है। अवधी और ब्रजभाषा दोनो पर तुलसी का असाधारण अधिकार रहा है।

सगुण काव्य की दूसरी पृथुल धारा कृष्ण-काव्य शाखा अत्यन्त समृद्ध एवं उत्कृष्ट है। हिन्दी की इस धारा के प्रथम कविरूप मे हम विद्यापति को पाते है जिन्होंने अपनी मैथिली पदावली मे कृष्ण के प्रेम और सौन्दर्य की शृंगारिक विवृति दिखाई है। परन्तु वास्तव मे हिन्दी काव्य की इस धारा के प्रवर्तक सूरदास है। सूरदास पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक वल्लभाचार्य के शिष्य रहे है। उनसे प्रेरणा ग्रहण कर अपनी काव्य प्रतिभा के बल पर सूर इस धारा को उत्कलित करने में सक्षम हो सके। अष्टछाप के कवियो मे हमे पूर्ण मात्रा मे कवित्व शक्ति के दर्शन होते है, सूर तो सिरमौर है—कुंभनदास, परमानन्द-दास और नन्ददास आदि अष्टछाप के कुछ विशिष्ट कवि है। कृष्णभक्ति मे रसखान आकंठ डूबे है। राधावल्लभी सम्प्रदाय, गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय, सखी

सम्प्रदाय कृष्णभक्ति के कुछ प्रमुख सम्प्रदाय है। इन सभी सम्प्रदायों के अनुयायी सैकड़ो प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध कवियों ने भक्तिकाल को सम्पन्न करने में स्तुत्य योग दिया है। भक्तिकाल के समस्त कृतित्व मे काव्य का चरम उत्कर्ष हमे सूरदास मे उपलब्ध होता है। कृष्णभक्ति की यह धारा माधुर्य भाव को लेकर चलती है। प्रेमाभक्ति की महत्ता तथा अन्य साधन-निरपेक्षता इस धारा की विशेषता है। धर्म के सामाजिक रूप को प्रश्रय मिला, साथ ही संगीत, साहित्य, चित्रकला आदि ललित कलाओं को भी इस धारा ने खूब प्रभावित किया। कृष्ण जीवन की मधुर कोमल झांकियां गीतो के माध्यम से निखर उठी है। इन गीतों में कवियों की स्वानुभूतिमूलक तन्मयता द्रष्टव्य है। इस तन्मयता का कारण उनकी भक्ति-भावना की गहनता है। भाव संकलन और उसकी संहिति इन गीतों मे कूट-कूट कर भरी है। कृष्णकाव्य मे कलात्मक सौन्दर्य अपनी चरम सीमा पर है। कृष्णधारा से भाषा को मधुरता मिली। अर्थ-व्यंजकता और काव्योपयुक्त चित्रण-शक्ति की अतीव वृद्धि वहा हुई है। ब्रजभाषा को पूरे हिन्दी प्रदेश की साहित्यिक भाषा बनाने का श्रेय इस शाखा को दिया जा सकता है। ब्रजभाषा को इसमे साहित्यिक, प्रांजल एवं परि-निष्ठित रूप मिला।

संत, सूफी, राम और कृष्ण-काव्य की धाराओ ने भक्तिकाल मे काव्य का बहुमुखी विकास किया। काव्य को अत्यन्त ऊंचे धरातल पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय उसे मिला। दर्शन, चिन्तन और व्यवहार की दृष्टि से इन चारों मे पर्याप्त अन्तर के बावजूद इनमे विलक्षण साम्य दृष्टिगोचर होता है। ब्रह्म की अद्वैतता और एकता मे अपने-अपने ढग से इन सभी का विश्वास है। ब्रह्म-सम्बन्धी कल्पना, उसके प्रति अटूट अनन्य भक्ति, प्रेम की पूर्णता और व्यापकता मे आस्था, गुरु के प्रति गहरी निष्ठा सभी मे एक जैसी पाई जाती है। मानव मूल्यों के प्रति गहरी अभिरुचि इन सभी मे हमे मिलती है और उसकी खोज के प्रति अथक चेष्टा का भाव सभी मे है।

भक्तिकालीन धारा अन्तिम अवस्था मे पहुंचते-पहुचते लौकिक शृंगार

बदरीनारायण, 'प्रेमघन', प० प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, राधाकृष्ण दास, ठाकुर जगमोहन सिंह आदि साहित्यकारों ने ब्रजभाषा के साथ-साथ खड़ी बोली मे भी अनेक काव्य रचनाएं की है। इतना सब होते हुए भी अपर्याप्त शब्द-भंडार के कारण खड़ी बोली इस युग मे काव्य-भाषा के रूप मे पूर्ण प्रतिष्ठित नही हो सकी । इस युग की काव्य-भाषा ब्रजभाषा और खड़ी-बोली का सम्मिश्रण प्रतीत होती है। भाषा-शुद्धि, मार्जन और क्रिया-पद-विधान की दृष्टि से वह न तो शुद्ध ब्रजभाषा है न खड़ीबोली। इस युग मे खड़ीबोली काव्य का समुचित विकास एवं परिष्कार नहीं हो पाया। हां, इतना अवश्य हुआ कि हिन्दी कविता शिक्षित जनता के सम्पर्क मे आ गयी।

भारतेन्दु युग की नवीन परिस्थितियों के अनुरूप नये सामाजिक अनुभवो की अभिव्यक्ति के लिए खड़ीबोली का अधिकाधिक प्रयोग स्वाभाविक ही था। सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक क्षेत्र मे जो नित्य नवीन परिवर्तन हो रहे थे उनकी समर्थ अभिव्यक्ति ब्रजभाषा मे सभव न थी। इस महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व को निभाने का काम खड़ीबोली ने किया। यद्यपि भारतेन्दु युग के काव्य साहित्य मे, खड़ीबोली अपने परिमार्जित रूप में उपलब्ध नहीं होती, तथापि वह अपनी युगानुरूप प्रतिष्ठा के लिए उद्योगरत अवश्य दिखाई देती है। उसके इस उद्योग का परिणाम आगे चल कर द्विवेदी युग मे हुआ।

भारतेन्दु युग के काव्य-साहित्य मे उस युग की नवीन आकांक्षाओं का बड़ी हार्दिकता के साथ चित्रण हुआ है। मध्यकालीन सामन्तीय व्यवस्था इस युग मे छिन्न होने लगी थी और शोषण पर आधारित आंग्ल शासन की आर्थिक एव राजनीतिक प्रणाली प्रतिष्ठित हो चुकी थी। ब्रह्मसमाज और आर्य समाज के उद्योग से एक नवीन सामाजिक एव धार्मिक चेतना का उदय हो रहा था। आंग्ल साहित्य के स्वातन्त्र्यवादी दृष्टिकोण ने भी भारतीय जन-मानस को प्रबल रूप में उद्वेलित किया। १८५८ मे इडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। जिसने तत्कालीन भारतीय चिन्ताधारा को एक राजनीतिक आन्दोलन के रूप मे परिणत कर दिया। तत्कालीन काव्य साहित्य मे इस राष्ट्रीय एवं

जातीय जागरण का यथार्थ प्रतिबिंब वर्तमान है। डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के शब्दों में "उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध के हिन्दी लेखकों और कवियों ने अपनी रचनाओं में नवभारत की राजनीतिक, और आर्थिक महत्वाकांक्षाएं प्रकट करके अपने चारो ओर के धर्म और समाज की पतित अवस्था पर क्षोभ प्रदर्शित करते हुए भविष्य के उन्नत और प्रशस्त जीवन की ओर इंगित किया है।" जातीय उद्बोधन, देश-प्रेम, स्वतन्त्रता और राष्ट्रीयता की चेतना, समाज-सुधार की प्रबल भावना, समाज की अवनति के प्रति क्षोभ, अनिष्ट-कर सामाजिक रूढ़ियो को तोडने की तत्परता, प्राचीन गौरव और इतिहास का स्मरण—ये भारतेन्दुयुगीन काव्य साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियां है। इस युग के काव्य मे नवीन सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक चेतना की स्फूर्ति-मयी व्यंजना हुई है, यद्यपि कला और संगीत माधुर्य की दृष्टि से वह विशेष समृद्ध नही है सोता हुआ साहित्य जाग तो पडा था पर पूरी तैयारी और रूप-सज्जा के साथ उठकर खडा न हुआ था।"

भारतेन्दुयुगीन काव्य-धारा मुख्यत तीन दिशाओ मे प्रवाहित हुई है—वैष्णव काव्य-धारा, शृंगार प्रधान काव्य-धारा और जातीय तथा राष्ट्रीय काव्यधारा पहली दो काव्यधाराएं भारतीय साहित्य की परम्परा से संबद्ध थी और अन्तिम तत्कालीन परिस्थितियो से प्रादुर्भूत हुई थी। जातीय तथा राष्ट्रीय काव्यधारा का वह अग, जो दहेज, शिक्षा के अभाव, सामाजिक और सास्कृतिक अध.पतन आदि से सबंधित है, शुष्क और उपदेशात्मक है। उसमें काव्यत्व कम, विषय-वैविध्य ही अधिक है। इस युग मे कवियो ने काव्य विषयों को यथार्थवादी और व्यापक बनाने का पुष्कल उद्योग किया, जिसके परिणाम-स्वरूप कविता 'राधिका कन्हाई सुमिरन को बहाना' मात्र न रहकर जीवन की विस्तृत अभिव्यक्ति का साधन बनने मे समर्थ हुई। हिन्दी काव्य साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु मंडल के कवियों ने एक युगान्तर उपस्थित कर दिया।

खड़ीबोली काव्य का पूर्णोदय आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के युग मे हुआ। ब्रजभाषा और खड़ीबोली का भारतेन्दुयुगीन सघर्ष इस युग में

मर्मस्पर्शी तथा पत्र प्रमोद आदि में संग्रहीत काव्य-रचनाएँ उपदेशपूर्ण होते हुए भी युग-प्रवृत्ति के अनुकूल और लोकमंगल-साधक हैं। द्विवेदी युग के काव्य संयम और परिष्कृत रुचि है।

द्विवेदी युगीन भारत की राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना का अनुभव तथा उसके प्रतिनिधि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में हुआ। अतिरिक्त देश-भक्ति और अतीत की गौरव-गाथा की दृष्टि से गुप्त जी की भारत भारती एक अविस्मरणीय कृति है। जयद्रथवध में उनकी राष्ट्रीय चेतना ही उच्छ्वसित हुई है। बक-संहार, वन-वैभव, सैरन्ध्री, द्वापर, पत्रावली, नहुष और जयद्रथ वध आदि पौराणिक आख्यानमूलक काव्यों में उनकी सांस्कृतिक चेतना तथा अनघ, द्वापर, साकेत, काबा और कर्बला, गुरुकुल एवं यशोधरा आदि काव्यों में उनकी युगचेतना बलिष्ठ रूप से व्यक्त हुई है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रति कवि का अगाध प्रेम सर्वत्र दर्शनीय है।

गुप्तजी की राम-भक्ति उनके काव्य को आदर्शोन्मुख और लोक-मंगल विधायक बनाने में सहयोगी हुई है। काव्य के माध्यम से आत्मोत्कर्ष और समाज-संस्कार की प्रेरणा देने को वे कवि-कर्म का अभिन्न अंग मानते हैं—'केवल मनो-रंजन न कवि का कर्म होना चाहिए, उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।' इसी मान्यता के कारण उनके काव्य में जातीय गौरव के अनुकूल लोक-मर्यादाबद्ध चरित्रों को प्राधान्य मिला है।

गुप्त जी का काव्य नवीन सामाजिक दृष्टिकोण से सम्पन्न है और उन्होंने अवांछित सामाजिक रूढ़ियों पर तीव्र प्रहार किये हैं। भारतीय नारी के प्रति उनकी असीम ममता है और द्वापर में उसका पक्ष-समर्थन करते हुए पुरुष के स्वामित्व पर उन्होंने कठोर व्यंग्य किया है।

गुप्त जी के कथा-काव्यों में प्रायः सभी प्रमुख रसों की रूप योजना हुई है, किन्तु उनके अधिकांश काव्यों में शृंगार, करुणा, वीर और शान्त रस का प्राधान्य है।

खंड-काव्य, महाकाव्य तथा मुक्तक काव्य लिखने के साथ-साथ गुप्तजी ने

गीत-काव्य भी लिखा है। उन्होंने तुकान्त-अतुकान्त—दोनों ही प्रकार की रचनाएं की है, किन्तु तुकान्त रचनाओं के प्रति उनका विशेष मोह है। तुक जोड़ने में वे बेजोड़ है। उनके साकेत को तो भिन्न भिन्न प्रकार के छन्दों का भंडार समझना चाहिए।

गुप्त जी की काव्य-भाषा ऋजु एवं प्रांजल खड़ी बोली है और यथाप्रसंग उसमें प्रसाद, माधुर्य, और ओज गुणों का समुचित सन्निवेश हुआ है। वे खड़ी-बोली के अभिधा प्रधान कवि है।

गुप्त जी के काव्य में प्राचीन एवं अर्वाचीन का सुन्दर समन्वय हुआ है। साकेत में सीता को सूत कातने की प्रेरणा देना और राम-वन-गमन के अवसर पर नगरवासियों का असहयोग करना कवि पर पडे हुए गान्धीवाद के प्रभाव का प्रतीक है।

गुप्तजी के काव्य-ग्रन्थों की संख्या लगभग ४० है, किन्तु काव्य-कला की दृष्टि से पंचवटी, यशोधरा, द्वापर और साकेत विशेष उल्लेखनीय है। पंचवटी का प्रकृति वर्णन सुन्दर है। बीसवी सदी की सीता और लक्ष्मण की जीवन-झांकी भी दर्शनीय है। यशोधरा हिन्दी का एक सफल चंपूकाव्य है, जिसमे गौतम-बुद्ध की पत्नी यशोधरा की जीवन-गाथा का मार्मिक अंकन किया गया है। भारतीय नारी-जीवन का यह चित्र बड़ा मर्मस्पर्शी है—"अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी, आंचल में है दूध और आंखों मे पानी।" 'द्वापर' कृष्ण-चरित्र मूलक रचना हैं, जिसके प्रायः सभी पात्र वर्तमान युग की समस्याओं के समाधान में तत्पर दिखाई देते है। कृष्ण, राधा और बलराम आदि का चरित्र भी मनोयोगपूर्वक अंकित किया गया है। साकेत लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला के विरह पर आधारित काव्य है, किन्तु उसके नायक-नायिका राम और सीता ही है। कथावस्तु, शैली, चरित्र-चित्रण, छन्द-विधान और प्रकृति-वर्णन आदि की दृष्टि से यह एक वैविध्यपूर्ण रचना है।

संक्षेप में मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के सर्वाधिक लोकविश्रुत एव प्रतिनिधि कवि है और खड़ीबोली काव्य के उन्नयन मे उनका योगदान महत्वपूर्ण है।

पं० नाथूराम शर्मा 'शंकर' द्विवेदी युग के अन्यतम रससिद्ध कवि थे और भाषा तथा छन्दों पर उनका अद्भुत अधिकार था। शंकर सर्वस्व में संगृहीत नैसर्गिक शिक्षा, कर्मवीरता, प्रचण्ड प्रतिज्ञा, उद्बोधनाष्टक आदि कविताओं में उनकी लोकहित-साधक भावना का सुगठित एवं सरस प्रसार दिखाई देता है। नयी सभ्यता के अनाचारों अन्धविश्वासों और सामाजिक कुरीतियों पर उन्होंने कठोर प्रहार किये हैं। उपदेशगर्भित विचारों के कारण यत्र-तत्र उनका काव्य शुष्क भी हो गया है, किन्तु समग्रत वे अपने युग के रससिद्ध कवि थे। शंकर-सरोज, अनुराग-रत्न, गर्भरंडा-रहस्य, वायस-विजय आदि उनकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं।

प० रामनरेश त्रिपाठी द्विवेदी युग के अन्य महत्वपूर्ण कवि हैं। उनके काव्य मे देश-भक्ति, प्रकृति, कर्म तथा प्रेम आदि का स्वच्छन्द एवं मार्मिक चित्रण हुआ है। समसामयिक तथ्यों का उद्घाटन करते हुए वर्तमान को प्रेरणा देना उनके काव्य की प्रधान विशेषता है। उनकी कल्पना बहुत सशक्त थी। मिलन, पथिक और स्वप्न शीर्षक खंडकाव्यों में कवि ने स्वकल्पित नूतन कथाओं की सुन्दर उद्भावना की है। इन रचनाओ मे लौकिक प्रेम की सात्विकता, लोकहित भावना, प्रकृति-सौन्दर्य और राष्ट्रीय जाग्रति का कलात्मक एव मार्मिक अंकन हुआ है। मानसी की स्फुट कविताओं में कवि की सामाजिक चेतना मुखरित हुई है।

द्विवेदी-युग के खड़ीबोली काव्य-विकास में देवीप्रसाद 'पूर्ण', पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', रामचरित उपाध्याय, लोचनप्रसाद पाण्डेय, गोपालशरण सिंह और पं० मातादीन शुक्ल आदि कवियों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन सभी कवियों ने अपनी रचनाओं मे सामाजिक समस्याओं का अकन किया है और राष्ट्र को जागरण का सन्देश दिया है।

समवेत रूप से द्विवेदी युग काव्यानुरूप खड़ीबोली के निर्माण का युग है। शब्दों के शुद्ध चयन, प्रसाद गुण सपन्न भाषा और व्याकरण सम्मत पदावली के प्रयोग पर कवियो ने इस युग मे विशेष बल दिया। अनुभूति-व्यंजना, मार्मि-

कता, ध्वन्यात्मकता और इन्द्रधनुषी कल्पना का वैभव इस युग के काव्य में लगभग अप्राप्य है। इतिवृत्तात्मक एवं उपदेशमूलक रचनाओं का ही इस युग मे प्राधान्य रहा। प्रकृति के विराट वैभव और मानव हृदय की सुकुमार भावनाओं की अनुभूतिमूलक सूक्ष्म व्यंजना की ओर कवियों का विशेष ध्यान नहीं गया। फिर भी भारतेन्दुयुगीन काव्य-विषयों को इस युग के कवियो ने पूर्वापेक्षा अधिक परिष्कृत रूप मे उपस्थित किया और काव्य-क्षेत्र को व्यापक बनाने तथा उसे मानव-जीवन के साथ संबद्ध करने मे महत्वपूर्ण योग दिया। इस रूप मे उनके कवि-कर्म का ऐतिहासिक महत्व है। स्वच्छन्दतावाद युग की पूर्व पीठिका का निर्माण वस्तुत. द्विवेदीयुगीन कवियों ने ही किया है।

सन् १९१४-१८ के महायुद्ध ने संसार की विचारधारा मे एक युगान्तरकारी हलचल उत्पन्न कर दी है। अन्धरूढ़ियां और पुरातन परपराएँ ध्वस्त हो चली। महायुद्ध के बाद सुख-शान्ति, सौख्य और स्वाधीनता का स्वप्न देखनेवाले भारतीयों को उपहार मे मिला पजाब का भयंकर हत्याकांड और रौलट ऐक्ट। देश मे ब्रिटिश शासन का जो दमन-चक्र चला उससे व्यक्तिगत और सामाजिक स्वातंत्र्य-भावना पर गंभीर कुठाराघात हुआ। इन परिस्थितियों ने जहाँ एक ओर नैराश्य को जन्म दिया वहा दूसरी ओर विद्रोह और विप्लव को भी प्रेरणा दी। तत्कालीन काव्य-साहित्य मे सामाजिक जीवन के इन व्यापक परिवर्तनों की व्यंजना सर्वथा स्वाभाविक थी।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय से प्राय. सन् १९३० तक के सक्रान्तिकालीन स्वच्छन्दतावाद युग के हिन्दी काव्य-साहित्य में दो समानान्तर धाराए स्पष्ट दृष्टिगत होती है। एक राष्ट्रीय सास्कृतिक काव्यधारा, जिसके प्रतिनिधिकवि माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और रामधारीसिह 'दिनकर' आदि है तथा दूसरी छायावादी रहस्यवादी काव्य-धारा जिसके प्रतिनिधि कवि प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी आदि है।

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-धारा के कवियों ने अपने राष्ट्रीय काव्य में सामाजिक यथार्थ की सजीव व्यंजना की है। स्वदेश-प्रेम और अतीत का गौरव-

गान करते हुए इन कवियो ने जन-जन मे स्वातंत्र्य-भावना को जाग्रत किया और उन्हें आत्मबलिदान की प्रेरणा दी। माखनलाल चतुर्वेदी की 'फूल की चाह' और सुभद्राकुमारी चौहान की 'झांसी की रानी' और 'वीरों का कैसा हो वसन्त' आदि इस संक्रान्ति-युग की अविस्मरणीय रचनाएं है। छायावादी कवि प्रसाद और निराला ने भी इस युग मे राष्ट्रीय भावनाओं से संपन्न कुछ अमर रचनाएं की है। प्रसाद के 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' तथा 'हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती' आदि गीत और निराला की 'भारति जय विजय करे' 'जागो फिर एक बार,' 'शिवाजी का पत्र' आदि काव्य रचनाएँ हिन्दी कविता की अनुपम निधि है। सन् १९३० से आज तक राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य-धारा निरन्तर विकासमान रही है और माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, रामधारीसिंह 'दिनकर', मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द', हरिकृष्ण 'प्रेमी' आदि कवियों ने उसके संस्कार-परिष्कार और उसकी समृद्धि मे महत्वपूर्ण योग दिया है।

माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' के काव्य मे राष्ट्रीय, सांस्कृतिक एवं प्रगतिशील चेतना की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है। उनका काव्य विचारप्रेरक है और भावुकता से तरंगायित भी है। प्रौढ़ समाज-चिन्तन, समाज-संस्कार और युग-निर्माण भावना का उसमें सुन्दर समन्वय है। हिम-किरीटिनी और हिमतरंगिनी आदि की देश-भक्ति, स्वातंत्र्य-प्रेरणा और बलिदान भावना से ओतप्रोत उनकी राष्ट्रीय कविताएं हिन्दी काव्य-साहित्य की निधि है। समर्पण, युग-चारण तथा वेणु लो गूजे धरा आदि परवर्ती कृतियो मे उनका राष्ट्रवाद बहुत व्यापक हो गया है और वह मानववाद को भी अपने में समाहित किये हुए है। उनकी कविताओं मे देश के राजनीतिक वातावरण और जनजीवन का समर्थ प्रतिनिधित्व हुआ है। प्रकृति एवं रहस्य चिन्तन की भी उनकी कुछ कविताओं में सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। ओज, करुणा और माधुर्य उनके काव्य के विशेष गुण है। उक्ति-वक्रता से समन्वित होने पर भी उनकी भाषा ऋजु एवं प्रसादक है। मुहावरो के प्रासंगिक प्रयोग से उनकी अभिव्यक्ति

और सजीव हो गयी है। कहीं-कहीं उनकी अनुभूति व्यंजना धूमिल और अस्पष्ट भी है। दूख (दुःख), पै (पर), मूरख (मूर्ख), तलक (तक) जैसे प्राकृत शब्द प्रयोग भी चिन्त्य है। समग्रतः चतुर्वेदी जी हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य-धारा के एक समर्थ कवि है। और उनका काव्य अपने युग की अपराजेय स्वातंत्र्य-भावना, प्रगतिशीलता और क्रान्तिकारिता का ओजस्वी उद्घोष है।

पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का काव्य राष्ट्रीय भावना-संपन्न एवं विप्लव-वादी है। उन्होंने शृंगार और करुण रस का उद्रेक करनेवाली कविताएं भी खूब लिखी हैं। उनकी राष्ट्रीय कविताओ मे प्रलय की कामना, युगजीवन की करुणा, भारत के उज्ज्वल अतीत की स्मृति, साम्राज्यवादी व्यवस्था के प्रति आक्रोश और देश के भविष्य के प्रति आशावादी दृष्टिकोण का ओजस्वी व्यंजन हुआ है। कुंकुम, अपलक, रश्मिरेखा, क्वासि, विनोबा-स्तवन, उर्मिला आदि उनकी प्रतिनिधि काव्य-कृतियां हैं। नवीन जी का राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य प्रौढ़ एवं क्रान्तिकारी है।

रामधारीसिंह 'दिनकर' की कविता उग्र राष्ट्रीयता की ओजस्वी ललकार है। उसमे ध्वंसात्मक क्रान्ति-भावना, लोकोन्मुखता और सामाजिक साम्य-चेतना का गंभीर गर्जन है। हुंकार, सामधेनी, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी आदि काव्य-कृतियों में उनकी क्रान्ति एवं विप्लववादी राष्ट्रीयता का बड़ा तेजस्वी अंकन हुआ है। 'दिनकर' मुख्यत. वीर, करुण और शृंगार रस के कवि हैं। रेणुका, रसवन्ती और उर्वशी आदि कृतियों मे उनकी शृगारमूलक भावनाएं सरल रूप मे व्यजित हुई हैं।

'दिनकर' की राष्ट्रीय कविताओ में वर्तमान सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है। पाटलिपुत्र की गंगा, दिल्ली, हिमालय, बुद्ध देव आदि कविताओं में समृद्ध अतीत का स्मरण करते हुए वर्तमान जीवन की विद्रूपता का चित्रण किया गया है और युग परिवर्त्तन हेतु प्रलय की उत्कंठापूर्ण कामना व्यक्त की गयी है। समाज के शोषित और उपेक्षित वर्गों के प्रति दिनकर की गहरी सहानुभूति है और इसीलिए उनका राष्ट्रीय काव्य प्रगतिशील चेतना से सर्वत्र अनुप्राणित है।

'दिनकर' ने मुक्तक काव्य-रचना के साथ-साथ प्रबन्धात्मक रचनाए भी की है। रश्मिरथी मे कर्ण को शोषित समुदाय का प्रतिनिधि निरूपित करते हुए उसके चरित्रांकन के माध्यम से जातीय समस्याओं को उभारा गया है। कथावस्तु, चरित्रांकन, उद्देश्य और रचना-सौष्ठव की दृष्टि से रश्मिरथी एक सशक्त खडकाव्य है। कुरुक्षेत्र चिन्तन प्रधान कृति है, जिसमे कवि का शंकाकुल हृदय मस्तिष्क के स्तर पर चढकर बोला है। युद्ध के औचित्य और अनौचित्य की समस्या पर विचार करते हुए समाज में न्याय और समता की स्थापना के लिए कवि ने उसके औचित्य का प्रतिपादन किया है। प्रबन्ध शिथिलता और भावावेश की अतिशयता होते हुए भी यह एक श्रेष्ठ काव्य-कृति है। उर्वशी शृगार, वीर तथा वात्सल्यरस प्रधान खडकाव्य है, जिसमे वैयक्तिक भूमिका पर काम और अध्यात्म के सम्मिलन का उपक्रम है। उर्वशी के पौराणिक कथानक को नवीन रूप में प्रस्तुत करते हुए उसमे भोगवादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया गया है, जो चिन्त्य है। भावभूमि की अपेक्षा इस काव्य का कला-पक्ष अधिक सशक्त है। उर्वशी की परिष्कृत भाषा 'दिनकर' की काव्य-साधना की गौरवपूर्ण उपलब्धि है। द्वन्द्व-गीत, बापू, नीम के पत्ते, नीलकुसुम और इतिहास के आँसू आदि 'दिनकर' की अन्य काव्य कृतियां हैं।

'दिनकर' का शब्द-भडार, उनकी भाषा-शैली ओज-प्रसाद-माधुर्य समन्वित एव सशक्त और भाव-व्यजना आह्लादकारिणी है।

राष्ट्रीय काव्य-धारा के विकास मे सियारामशरण गुप्त, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द', हरिकृष्ण 'प्रेमी' और श्यामनारायण पांडेय आदि कवियो का भी उल्लेखनीय योगदान है। इन सभी कवियो ने अपने काव्य में राष्ट्रीय भावनाओ की अभिव्यक्ति की है और देश तथा जातीय गौरव के गीत गाये हैं।

सक्षेप मे देश-प्रेम, स्वातन्त्र्यप्रेम-कामना, बलिदान भावना, राष्ट्रीय तथा जातीय गौरव का आख्यान, सामाजिक विषमताओ का यथार्थ एवं सजीव चित्रण, शोषक वर्ग पर प्रहार, अहिंसात्मक और ध्वंसात्मक क्रांति का आवाहन और सुधार-भावना आदि राष्ट्रीय काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियां है।

स्वच्छन्दतावादी काव्य की दूसरी धारा छायावाद से संबद्ध है, जो हिन्दी की एक अत्यन्त समृद्ध, कलात्मक एवं सौन्दर्यशालिनी काव्य-धारा है। द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता, रूढिबद्धता और अतिनैतिकता से मुक्त प्रसाद, निराला और पन्त आदि छायावादी कवियों ने अपने काव्य मे नवीन सौंदर्य-बोध, प्रणय-भावना और नूतन भाषा एवं छन्द विधान आदि की प्रतिष्ठा की और विशेष ध्यान दिया। द्विवेदीयुगीन पद्यात्मक एवं उपदेशमूलक सुधार भावना छायावादी काव्य में सरस, परिष्कृत एव कलात्मक रूप मे व्यक्त हुई और राष्ट्रीयता, मानवतावाद आदि की प्रतिष्ठा के साथ-साथ उसमें प्रेरणा का तत्व विशेष रूप से विकसित हुआ। छायावादी काव्य में व्यक्तिवाद, अतृप्त प्रेम, निराशा एवं वेदना, चेतनारोपित जिज्ञासात्मक रहस्य-भावना, मानवतावाद, राष्ट्रप्रेम और हृदय के कोमल भावो की, नवीन लाक्षणिक भाषा, छन्दो, अलंकारों और प्रतीको के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। उसमे यत्र-तत्र पलायनवादिता का स्वर भी मुखरित हुआ है, किन्तु वही उसका मूल स्वर नही है। उदात्त कल्पना के साथ-साथ छायावादी काव्य मे भावुकता, चिन्तन और सामाजिक चेतना की भी सौष्ठवपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। छायावादी कवियो की प्रणय व्यंजना आदर्शमूलक अपार्थिव तथा अतीन्द्रिय है। प्रकृति को एक चेतन सत्ता मानकर छायावादी कवियों ने उसके माध्यम से अपनी हर्ष-विषाद जनित विविध अनुभूतियो को बड़े मार्मिक रूप मे अंकित किया है। वैयक्तिकता छायावादी काव्य की मुख्य प्रवृत्ति है। छायावादी कवियो ने अपनी रचनाओ में वैयक्तिक सुख-दुख, हर्ष-विषाद, आशा-निराशा आदि की पुष्कल व्यंजना की है। दुख, पीड़ा, वेदना और अवसाद के विविध रूपात्मक चित्रण से छायावादी काव्य पूर्ण है। जिज्ञासात्मक रहस्य-भावना और मानवतावाद आदि की व्यंजना छायावादी काव्य की अन्य प्रमुख प्रवृत्तियां है। सक्षेप मे वैयक्तिकता, प्रकृति-प्रेम, शृंगार एवं सौन्दर्य-भावना, करुणा की विवृति, अज्ञात के प्रति प्रेम, नारी का नवीन रूप-चित्रण, मानवतावादी जीवन-दर्शन और छद, अलंकार, प्रतीक-विधान, ध्वन्यात्मकता, व्यंजन-शैलीगत वैशिष्ट्य आदि छायावादी काव्य की

परिमल मे संग्रहीत 'जुही की कली', 'संध्या सुन्दरी,' 'यमुना के प्रति,' 'विधवा' 'भिक्षुक', 'बादल-राग' और 'जागो फिर एक बार' आदि कविताएं अत्यन्त मार्मिक, सरस और प्रभावपूर्ण हैं। गीतिका के शास्त्रीय राग-रागिनियों मे निबद्ध गीतों मे निश्छल आत्मनिवेदन, सौन्दर्य एवं शृंगार, प्रकृति-सौन्दर्य, अद्वैतवादी दार्शनिकता, राष्ट्रप्रेम और मानवतावाद आदि की रमणीय व्यंजना हुई है। अनामिका मे निराला की प्रतिभा का विशेष चमत्कार दिखाई देता है। इस संग्रह की 'सरोज-स्मृति' और 'राम की शक्ति पूजा' शीर्षक रचनाएं महाकाव्य की उदात्तता और गरिमा से संपन्न है। भाव, विषय वैविध्य, भाषा-शैली, चिन्तन और कल्पना-सभी दृष्टियों से गीतिका के गीत अनुपम हैं। तुलसीदास निराला का सफल प्रबन्ध-काव्य है, जिसमे तुलसी और रत्नावली के सुन्दर चरित्र-चित्रण के साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति का भी कलात्मक अंकन हुआ है। कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला और नये पत्ते मे निराला जी की प्रगतिवादी चेतना अभिव्यक्त हुई है। अर्चना और आराधना भक्ति तथा संयत शृंगार-परक गीत-संग्रह है। निराला के काव्य मे छायावादी काव्य की सारी विशेषताएं अपने परिष्कृत रूप मे उपलब्ध है। उनका काव्य छायावादी काव्य साहित्य की अनुपम निधि है।

प० सुमित्रानन्दन पन्त, छायावादी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं। उनके काव्य मे प्रकृति का बडा रमणीय चित्रण हुआ है। गत्यात्मक सौन्दर्य, सजीवता, बिम्ब-विधान और इन्द्रधनुषी कल्पना से विलसित उनका प्रकृति-चित्रण छायावादी काव्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। नौका-विहार, हिमाद्रि, हिमप्रदेश, बादल, एक तारा, सन्ध्या, वर्षागीत, सन्देश और दिवास्वप्न आदि कविताओ मे प्रकृति का रमणीय चित्रण हुआ है। पन्तजी ने प्रकृति के कोमल रूपों का ही चित्रण अधिक किया है। उसके रुद्र और विराट् रूपों का चित्रण उनके काव्य मे विरल है। केवल बादल और परिवर्तन जैसी कुछ रचनाओं में ही अपवादत प्रकृति के रुद्र और विराट रूपों का चित्रण हुआ है।

पन्तजी के काव्य में शरीरी और अशरीरी दोनों ही प्रकार का शृंगार-

चित्रण उपलब्ध है। अशरीरी शृंगार-चित्रण की दृष्टि से उनकी अप्सरा शीर्षक कविता द्रष्टव्य है। ग्रंथि में कवि ने सयोग शृंगार के सुन्दर चित्र अकित किये है। प्रेम, सौन्दर्य और शृंगार की व्यंजना उन्होंने प्रकृति और नारी दोनों के ही माध्यम से की है। नारी के काल्पनिक अथवा मांसल रूप का चित्रण करते हुए उन्होंने उसे मलिनता से सर्वथा मुक्त रखा है। उनकी प्रथम रश्मि, शिशु, मौन निमंत्रण, एक तारा, नौका-विहार तथा परिवर्तन आदि कविताओं में दार्शनिक विचारों एवं रहस्यात्मक उद्गारो की कमनीय व्यजना हुई है। दिवास्वप्न शीर्षक रचना में उनकी पलायनवादी प्रकृति का भी परिचय मिलता है। पन्त के काव्य मे कोमलकान्त पदावली द्वारा सुकुमार अनुभूतियों और कल्पनाओ का कलात्मक चित्रण हुआ है। वे शब्दों और उनकी अर्थ गरिमा के पारखी है। उनके काव्य में यति-गति युक्त एव नाद-सौन्दर्य-समन्वित मात्रिक छन्दों का ही विशेष प्रयोग हुआ है। रूपक योजना एवं नवीन उपमान-विधान से उनकी रचनाएं दीप्त है। विशेषण विपर्यय, विरोधाभास, मानवीकरण तथा चित्रमय प्रतीक-विधान का उनके काव्य मे विशेष चमत्कार दिखाई देता है। उनकी व्यंजना-शैली लाक्षणिक एवं ध्वन्यात्मक है। पल्लव, गुंजन, उत्तरा, कला और बूढ़ा चाद तथा लोकायतन आदि प्रौढ़ काव्य-कृतियो में उनकी इन काव्यगत विशेषताओ को सहज ही लक्ष्य किया जा सकता है। युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या—उनकी प्रगतिवादी रचनाएं है, जिनमें उन्होने सामाजिक विषमताओ का अंकन करते हुए साम्यमूलक नये युग का आह्वान किया है। स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा और अतिमा मे अरविन्दवादी दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है और प्रतिपादित किया गया है कि भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के समन्वय द्वारा ही युग की समस्याओ का समाधान संभव है।

छायावादी काव्य-धारा के विकास में महादेवी वर्मा का महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक युग में भावात्मक रहस्यवाद की वे सर्वप्रमुख कवयित्री है। आत्मा का परमात्मा के प्रति विह्वल प्रणय-निवेदन रहस्यवाद है। महादेवी के अधिकाश

का उपयोगितावादी संकुचित दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया और उसके स्थान में देश-प्रेम और व्यापक मानवतावाद के साथ-साथ वैयक्तिकता, भावात्मकता शृंगार एवं सौन्दर्य आदि की प्रतिष्ठा हुई। सहृदय सापेक्ष संयम और शालीनता इस युग के काव्य में भी है, किन्तु उसमें द्विवेदीयुगीन नैतिकता की अनिवादिता नहीं है। इस युग के काव्य में यथार्थ, कल्पना और अनुभूति का रम्य समन्वय हुआ है। पद-विन्यास, छन्द प्रयोग, अलंकार योजना, ध्वनि-संयोजन और प्रतीक विधान आदि में एक अभूतपूर्व चमत्कार दिखाई देता है। खड़ीबोली का परिष्कृत, समृद्ध एवं काव्योचित रूप स्वच्छन्दतावाद-युग में ही निर्मित हुआ। काव्योन्मेष की दृष्टि से स्वच्छन्दतावाद-युग हिन्दी-काव्य-साहित्य का स्वर्ण-युग है।

छायावादोत्तर काव्य में, जिसके प्रतिनिधि कवि बच्चन, अंचल और नरेन्द्र शर्मा है, काव्य को छायावादी कुहेलिका से मुक्त कर उसे जीवन और जगत् की यथार्थता में प्रतिष्ठित करने के साथ-साथ वैयक्तिक सुख-दुःख और हर्ष-विषाद के निष्कपट प्रकाशन को विशेष गौरव दिया गया। छायावाद की काल्पनिक, अशरीरी एवं सूक्ष्म प्रेम-व्यंजना के स्थान में इन कवियों ने लौकिक प्रणय और स्थूल मांसल शृंगार की अभिव्यक्ति को प्रधानता दी और काव्य के विषय एवं शैलीगत नवीन प्रतिमानों को स्थापित करने का उपक्रम किया। ईश्वर और धर्म के प्रति अनास्था, जीवन की क्षणभंगुरता में विश्वास, भोगवाद की स्वीकृति, सामाजिक विषमता का चित्रण, प्रगतिवाद और व्यापक मानवतावाद का समर्थन आदि इन कवियों के काव्य की अन्य प्रमुख प्रवृत्तियां है।

हरिवंशराय 'बच्चन' छायावादोत्तर काव्य-धारा के प्रतिनिधि कवि है। उनका अधिकांश काव्य मुख्यत. लौकिक प्रणय, स्थूल मांसल एव शृंगार का काव्य है। वैयक्तिकता बच्चन के काव्य की मुख्य विशेषता है। निशा-निमन्त्रण, एकान्त संगीत, आकुल अन्तर आदि अपनी काव्य-कृतियों में उन्होंने वैयक्तिक दुःख, निराशा, अवसाद, वेदना, पराजय और मन.विक्षोभ की बड़ी

स्वाभाविक, सजीव एव मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति की है। उनका हालावादी काव्य विशेष ख्यात है। मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश तथा हलाहल आदि काव्य-ग्रन्थो में उन्होने प्राय. प्रतीको के माध्यम से क्रूर नियति-परिचालित विश्व की नश्वरता, ईश्वर और धर्म की निरर्थकता तथा उन्मुक्त भोगवाद की सार्थकता का अपनी विशिष्ट तर्कपद्धति द्वारा प्रतिपादन किया है। उनका काव्य संयोग शृंगार प्रधान अधिक है, वियोग शृंगार प्रधान कम, किन्तु उन्होने संयोग और वियोग दोनों के ही गीत बड़ी तन्मयता के साथ गाये है। वैयक्तिकता के साथ-साथ उनके काव्य मे समाजोन्मुखता, राष्ट्रीयता और प्रगतिशीलता की प्रवृत्ति भी है। बंगाल का अकाल, सूत की माला, खादी के फूल, धार के इधर-उधर, बुद्ध और नाचघर आदि काव्य ग्रन्थो की कविताएं सामाजिक पृष्ठभूमि पर ही लिखी गयी है। कई कविताओ में सामाजिक विषमताओ और असगतियो की बड़ी सजीव अभिव्यक्ति हुई है। त्रिभंगिमा में उत्तर प्रदेश की लोकधुनों मे ग्रामीण जीवन का सुन्दर अकन किया गया है। बच्चन के काव्य मे सस्कृति-बोध भी है। आरती और अंगारे में उन्होने वाल्मीकि, कालिदास, सूर, भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियो तथा साची, अजन्ता आदि के कलाकारों के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलियां अर्पित की है। उनकी भाषा-शैली भावानुकूल, चित्रात्मक, व्यावहारिक सरल, मधुर और प्रभावशाली है। उक्ति-चमत्कार, अभिव्यक्ति की स्पष्टता और गहराई आत्मीयता उनकी अन्य विशेषताएँ है। उनके काव्य मे विविध तुकान्त छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। निशा-निमन्त्रण और एकान्त-संगीत बच्चन की श्रेष्ठ कृतियां है।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' छायावादोत्तर काव्य-धारा के विशिष्ट कवि है। वे उद्दाम यौवन, मांसल प्रेम, प्रगतिशील राष्ट्रीयता और प्रशस्त मानवतावाद के समर्थ गायक है। उनकी कविता अनुभूति, कल्पना और बौद्धिकता की मनोरम त्रिवेणी है। वैयक्तिकता उनके काव्य की अन्यतम विशेषता है। वैयक्तिक जीवन की विविध अनुभूतियों का उनके काव्य मे निश्छल एवं सजीव प्रकाशन हुआ है। मधूलिका और अपराजिता मे सगृहीत लौकिक प्रणय

और मांसल सौन्दर्य के उन्मादकारी गीतों द्वारा उन्होंने छायावादोत्तर हिन्दी काव्य मे एक सर्वथा नवीन प्रवृत्ति का प्रवर्त्तन किया है। वे मुख्यत. विप्रलम्भ शृंगार के कवि है। किन्तु उनका संयोग शृंगार-वर्णन भी अत्यन्त सजीव है। उनके काव्य में वेदना, नैराश्य और अवसाद आदि की भी व्यंजना हुई है, उनके काव्य का मूल स्वर आशावादी है। किरणवेला तथा करील कवि की प्रगतिशील रचनाएं है, जिनमें शोषितों के प्रति सहानुभूति शोषकों के प्रति घृणा, रूढ़ियों के प्रति विद्रोह, नारी स्वातन्त्र्य के प्रति शुभेच्छा और संघर्ष तथा क्रान्ति के प्रति उत्साह की यथार्थ और सजीव अभिव्यक्ति हुई। 'लालचूनर का वनफूल' शीर्षक कविता आधुनिक हिन्दी काव्य की एक विशिष्ट उपलब्धि है। 'अंचल' के काव्य मे राष्ट्रीय और सांस्कृतिक उद्गारो की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति हुई है। विरामचिह्न मे संगृहीत गान्धीजी, तुलसीदास, रानी दुर्गावती, उनको भूल न जाना और महाज्योति शीर्षक कविताएं इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है उनके काव्य में प्रकृति-सौन्दर्य का व्यापक चित्रण हुआ है। सन्ध्या, रात्रि, प्रात., दोपहर, पर्वत, बादल और विभिन्न ऋतुओं आदि के कवि ने बड़े मनोरम चित्र अंकित किये है। वर्षान्त के बादल संग्रह में वर्षा ऋतु के अत्यन्त सुन्दर चित्र उपलब्ध है। अनुपूर्वा मे भी प्रकृति-सौन्दर्य का सजीव चित्रण हुआ है। 'अंचल' का काव्य अपने युग के काव्य-विकास के प्रति सजग और उसकी चेतना से अनुप्राणित है। फलत. जहां एक ओर विराम चिह्न की नवयुग की दीवारें, ललित उत्पीड़न मनुज मुन ले जरा, वर्तमान, नूतन अभियान आदि कविताएं प्रयोगवादी शिल्प से सुसज्जित है वहां दूसरी ओर प्रत्यूप की भटकी किरण यायावरी की अनकही अनुगूंज, शीर्षकहीन, विश्वास, स्वप्न और सत्य आदि-कल्पनाएं नयी कविता की विशेषताओ से भी समृद्ध है। भाव-पक्ष के साथ-साथ 'अंचल' के काव्य का कला-पक्ष भी अत्यन्त सशक्त है। उनके काव्य में उपमा, रूपक, मानवीकरण और विशेषण विपर्यय आदि अलंकारो का बड़ा स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। करील, कटक, वनफूल, दीपक आदि प्रतीकों का भी यथाप्रसंग समर्थ उपयोग किया गया है। मात्रिक और मुक्त छन्दों के प्रयोग में

कवि ने प्रवीणता प्रदर्शित की है। 'अंचल' की काव्य भाषा संस्कृतगर्भित होते हुए भी प्रसादक, स्वाभाविक, संगीतात्मक और आवेगपूर्ण है। लक्षणा और व्यंजना के योग से वह और भी प्रभावपूर्ण हो गयी है। छायावादोत्तर गीति-काव्य के उन्नयन मे 'अंचल' के गीतो का महत्वपूर्ण योगदान है।

नरेन्द्र शर्मा, आरसीप्रसाद सिंह और भगवतीचरण वर्मा के काव्य मे भी छायावादोत्तर काव्य की सामान्य प्रवृत्तियां न्यूनाधिक रूप मे लक्ष्य की जा सकती है। इस काव्यधारा के विकास मे इन कवियों का योगदान भी पर्याप्त महत्व-पूर्ण है।

सन् १९३६ के आसपास देशव्यापी महगाई, बेकारी, मजदूर-आंदोलन, किसान-आंदोलन, बंगाल का अकाल आदि ऐसे अनेक कारण है जिनके परिणामस्वरूप हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन में तीव्र सामाजिक चेतना का प्रादुर्भाव अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका पर समाजवादी विचारधारा की सफलता ने भी हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को बल दिया और उसे राजनीतिक तथा आर्थिक स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए प्रेरित किया। इन्ही राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने साहित्य को भी समाज की प्रगति मे योग देने के लिए विवश किया।

सन् १९३६ मे प्रेमचन्द के सभापतित्व में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का अधिवेशन हुआ जिसमें सामाजिक प्रगति के तत्वों को साहित्य में समाविष्ट करने पर विशेप बल दिया गया। निराला और पन्त जैसे छायावादी कवियों ने भी इस नवीन साहित्यिक पुनर्जागरण के गीत गाये और प्रगतिवादी साहित्य के पथ को प्रशस्त किया। छायावाद की वैयक्तिकता और अतिशय काल्पनिकता के स्थान में सामाजिक यथार्थोन्मुखता की प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ और साहित्य में युगीन समस्याओ के चित्रण को प्रधानता मिली।

प्रगतिवादी काव्य मुख्यतः मार्क्सवादी विचारणा से अनुप्राणित है, फलतः वर्ग-संघर्प का उसमे व्यापक चित्रण हुआ है। पूजीवादी सभ्यता के अन्त और सर्वहारा वर्ग की साम्यमूलक सभ्यता की स्थापना में सहयोग करना प्रगतिवादी काव्य का मुख्य लक्ष्य है। इसलिए उसमे पूजीपतियों के प्रति घृणा और शोषित

जनता के प्रति सहानुभूति की अभिव्यक्ति हुई है। समाज की प्रगति में बाधक ईश्वर, धर्म और पुरातन रूढ़ियों के प्रति प्रगतिवादी कवियों ने घोर अनास्था व्यक्त की है। शोषण, विषमता और दरिद्रता से त्रस्त समाज को वे सर्वांगीण क्रान्ति द्वारा समता और आर्थिक समृद्धि से संपन्न समाज के रूप में परिवर्तित करना चाहते हैं। इसीलिए प्रगतिवादी काव्य में विध्वंस और क्रान्ति के स्वर अत्यन्त मुखर हैं। नये युग की चेतना को व्यक्त करने के लिये प्रगतिवादी काव्य में स्पष्ट, यथार्थ और व्यावहारिक भाषा का प्रयोग किया गया है। संक्षेप में प्रशस्त राष्ट्र-प्रेम, समाजवादी यथार्थवादिता, आस्था की दृढ़ता, सामयिकता, क्रान्ति और नवनिर्माण की उत्कट अभिलाषा, मानववादिता, स्वस्थ प्रणय-चित्रण, वर्गवादिता, प्रचारात्मकता, भौतिकता तथा बौद्धिकता और धर्म तथा ईश्वर के प्रति अनास्था आदि प्रगतिवादी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियां हैं।

कला की दृष्टि से यदि प्रगतिवादी काव्य बहुत समृद्ध नहीं, तो रंक भी नहीं है। डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन', डा० रामविलास शर्मा, नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल आदि अनेक कवियों ने उसे पर्याप्त श्री-संपन्न बनाया है। 'सुमन' प्रगतिवादी काव्य-धारा के एक प्रतिनिधि कवि हैं। जीवन के गान और प्रलय-सृजन में उन्होंने दासता, शोषण और अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाते हुए स्वतन्त्रता, संघर्ष और क्रान्ति का आह्वान किया है तथा सामाजिक नव-निर्माण के गीत गाये हैं। उनका काव्य प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियों का समर्थ प्रतिनिधित्व करता है। सरल, स्पष्ट, ओज और आवेगपूर्ण भाषा-शैली से उनकी कविताओं में एक विशेष दीप्ति आ गयी है। 'पर आंखें नहीं भरी और विश्वास बढ़ता ही गया' परवर्ती काव्य-संग्रह है।

प्रगतिवादी काव्य में यत्र-तत्र अनगढ़पन और अतिवादिता भी दिखाई देती है, किन्तु उसका वास्तविक महत्व जन-कल्याण की भावना की दृष्टि से है जिससे वह आद्यन्त ओतप्रोत है। उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त त्रिलोचन शास्त्री, रांगेय राघव और शील आदि कवियों ने भी प्रगतिवादी काव्य को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया है।

सन् १९४३ में अज्ञेय के संपादकत्व में प्रकाशित तारसप्तक के साथ ही हिन्दी मे प्रयोगवाद-युग का प्रादुर्भाव हुआ। प्रतीक मासिक और दूसरे सप्तक के प्रकाशन से प्रयोगवादी काव्य की रूपरेखा बहुत कुछ स्पष्ट हो गयी। प्रयोग-वादी काव्य-आन्दोलन भी हमारी राष्ट्रीय परिस्थितियो की ही उपज है। समाज की विषम परिस्थितियो से पराभूत, छायावाद की वायवीयता से सन्त्रस्त और प्रगतिवाद की अतिशय समाजवादिता से क्षुब्ध प्रयोगवादी कवियों ने काव्य-सत्य के अन्वेषण के प्रयास मे वैयक्तिकता और अह की प्रतिष्ठा तथा शैली-शिल्पगत विविध प्रयोगो पर ही अपनी दृष्टि विशेष रूप से केन्द्रित की। अपनी उलझी हुई संवेदनाओं को सप्रेषणीय बनाने के लिए उन्होंने जिस नयी भाषा की खोज की वह वैचित्र्यपूर्ण होने के साथ-साथ दुरूह भी है। वैयक्तिकता आत्मान्वेषण ओर अहं के प्रकाशन के लिए शैली और शिल्पगत प्रयोग ही प्रयोगवादी काव्य का मुख्य लक्ष्य जान पडता है। उसमे भावुकता और सरसता की अपेक्षा बौद्धिकता का प्राधान्य है। कला कला के लिए— उसका केन्द्रीय सिद्धान्त है। सक्षेप में व्यक्तिवाद और अहंवाद का पोषण, अनास्था की व्यंजना, निराशा, कुंठा, सत्रास और घुटन का व्यापक प्रदर्शन, पराजय और पलायन-भावना की अभिव्यक्ति, क्षणवादी और भोगवादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन, प्रणय-वेदना का प्रकाशन, प्रबल यौन भावना की अभिव्यक्ति और सकेतात्मक नवीन प्रतीक-विधान आदि प्रयोगवादी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियां है।

अज्ञेय प्रयोगवादी काव्य के प्रवर्त्तक और उनके प्रतिनिधि कवि है। इत्यलम् अज्ञेय का प्रथम प्रयोगवादी काव्य-संग्रह है, जिसमे उनकी व्यक्तिवादिता, नियति-वादिता और पराजयभावना आदि की अभिव्यक्ति का प्राधान्य है। 'शिशिर की राका निशा' कविता मे कवि ने प्रकृति सौन्दर्य को बडे कुरूप परिवेश मे चित्रित किया है। अज्ञेय की कविताओ मे बौद्धिकता, दुरूहता और अस्पष्टता आद्यन्त दिखाई पडती है। भाषा संस्कृत गर्भित है और उसमे सांके-तिक प्रतीक-योजना का बाहुल्य है। 'हरी घास पर क्षण भर' काव्य-संग्रह में

कवि ने प्रकृति और प्रणय के कुछ सुन्दर चित्र अंकित किये है। इस संग्रह की कविताओं में भी स्वप्न और यौन प्रतीको तथा अन्य संकेतगर्भी प्रतीकों का वाहुल्य है। 'कलगी वाजरे की' और 'हरी घास पर क्षण भर' 'कविताओं मे कवि ने नवीन उपमानों' की आकर्षक योजना की है। छन्दो के क्षेत्र में कवि ने अनेक प्रयोग किये है। कला और शिल्प प्रयोग की दृष्टि से अज्ञेय का काव्य क्रान्ति-कारी है। 'इन्द्रधनु् रौंदे हुये ये', 'अरी ओ करुणा प्रभामय' तथा 'आंगन के पार द्वार' अज्ञेय के अन्य महत्वपूर्ण काव्य-संग्रह हैं। इनमे संग्रहीत प्रणय और प्रकृति से संबंधित उनकी कुछ कविताएं सुन्दर है। प्रशस्त वैयक्तिकता पर आधारित उनकी महानगर, रात, हवाई यात्रा, ऊंची उड़ान और हिरोशिमा आदि कवि-ताएं भी सुन्दर है। इन संग्रहों में कवि के संवेदना-क्षेत्र का विस्तार हुआ है और प्रणय एवं प्रकृति के अतिरिक्त उसने अन्य विषयो पर भी कविताएं लिखी है। एक कुशल काव्य-शिल्पी के रूप मे अज्ञेय का योगदान ऐतिहासिक महत्व का है।

बालकृष्ण राव उन वरिष्ठ कवियो मे हैं जिन्होंने घनाक्षरी और सवैयो के प्रणयन से अपना कवि-कर्म आरम्भ कर अपनी विशिष्ट शैली द्वारा छाया-वादी युग में अपने कौमुदी एवं आभास जैसे काव्य संकलनों द्वारा शैलीगत नवीनता का परिचय देते हुए छोटी और मार्मिक कविताएं लिखकर आपने कल्पना और अनुभूति समन्वित एक विशिष्ट काव्य-पद्धति का प्रारम्भ किया था। आस्था और वेदना की सहज अभिव्यक्ति इनकी कविता की प्रमुख विशेषता है जो इनकी शिल्प संचेतना से सज्जित होकर और भी सशक्त बन जाता है। छायावादी गीत-सृष्टि से लेकर प्रयोगवाद और नई कविता के अभिनव रूपो तक इनकी काव्यधारा समान गति से चलती आई है। कवि और छवि, रात बीती, हमारी राह, अर्धशती आदि इनके परवर्ती काव्य-संग्रह है। प्रौ चिन्तन के सफल कवि के रूप मे बालकृष्ण राव नवीनता और संस्कारी प्राचीनता के समन्वय की दिशा मे बराबर बढते रहे है। काव्य-चेतना के नये-नये आयामों के प्रति सतत् जागरूक और संवेदनशील यह कवि वैचारिक

धरातल पर जीवन-मूल्यों के समीकरण का विश्वासी और आग्रही है। जीवन-संघर्ष और युगबोध का गम्भीर निरूपण इनके काव्य की विशेषता है जो सृजन की आंतरिक प्रेरणा से अनुप्राणित है।

धर्मवीर भारती प्रयोगवादी काव्यधारा के दूसरे प्रमुख कवि है। उनके काव्य में अन्तःप्रेरणा का विशेष योग है। ठंडा लोहा की कविताओं में शृंगार और मासल प्रेम के चित्रण मे उन्हे सफलता मिली है। उनकी कविताओ में प्रणय की पीड़ा, घुटन और निराशा की सजीव अभिव्यक्ति हुई है। प्रकृति चित्रण में उन्होंने या तो उद्दीपन रूप में किया है या फिर अपनी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में। अपनी जिन कविताओं मे भारती ने समाजोन्मुख आत्मसत्य की व्यंजना की है, वे विशेष प्रभावपूर्ण बन पडी है। कविता की मौत एक ऐसी ही सशक्त कविता है। भावात्मकता के साथ-साथ उनकी कविताओं में एक बौद्धिक नियन्त्रण भी है। सात गीत, वर्ष और कनुप्रिया भारती की अन्य महत्वपूर्ण काव्य-कृतियां हैं। सात गीत वर्ष मे कवि की वैयक्तिक अनुभूतियो के चित्रण की प्रधानता है। इस संग्रह के गीतों मे कवि ने वैयक्तिक कुठा, निराशा और अवसाद की अभिव्यक्ति करते हुए क्षणवादी दर्शन के प्रति विशेष आसक्ति प्रदर्शित की है। शंका जिज्ञासा, पराजित पीढी का गीत और टूटा हुआ पहिया आदि रचनाओं मे व्यक्तिवादिता का स्वर विशेष मुखर है। इस संग्रह के प्रकृति और प्रणय संबंधी कुछ गीत सुन्दर है। कनुप्रिया मे राधा के चरित्र को नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया है। भारती की समर्थ कवि-प्रतिभा का यह ग्रन्थ सुन्दर उदाहरण है। अन्धा युग गीति-नाट्य मे भारती ने जीवन के यथार्थ को मानववादी रूप मे चित्रित करने का सफल प्रयास किया है। भारती की कल्पना बहुत समृद्ध है और सौन्दर्य-चित्रण तथा अनुभूति व्यंजना के प्रसंग मे उन्होंने अपने बिंब-विधान-सामर्थ्य का सशक्त परिचय दिया है। उनके प्रतीक स्पष्ट और उनकी भाषा-शैली सरल, स्वच्छ, लयात्मक, चमत्कारपूर्ण तथा प्रभावशाली है। प्रयोगवादी कविता के उत्कर्ष मे भारती की रचनाओं का महत्वपूर्ण योगदान है।

प्रयोगवादी काव्य के उत्कर्ष मे अज्ञेय और भारती के अतिरिक्त सर्वेश्वर-दयाल सक्सेना, जगदीश गुप्त, विजयदेव नारायण साही और लक्ष्मीकान्त वर्मा आदि का योगदान भी उल्लेखनीय है।

आधुनिक युग के अनेक ऐसे भी कवि है जिन्होंने प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की अतिवादिता से बचते हुए और उनकी स्वस्थ प्रवृत्तियों को आत्मसात् करते हुए हिन्दी काव्य के विकास मे महत्वपूर्ण योग दिया है। ऐसे कवियो में भवानीप्रसाद मिश्र, गिरिजाकुमार माथुर, शमशेर बहादुर सिंह, मुक्तिबोध भारतभूषण अग्रवाल, नेमिचन्द्र जैन, नरेश मेहता, हरिनारायण व्यास, रघुवीर सहाय, प्रभाकर माचवे, जयशंकर त्रिपाठी, श्रीकान्त जोशी और चन्द्रकान्त देव-ताले के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

नव्य गीत-काव्य के क्षेत्र मे वीरेन्द्र मिश्र, शंभूनाथ सिंह, नीरज, श्रीपालसिंह क्षेम, रमानाथ अवस्थी, हंसकुमार तिवारी, नईम, शलभ, चन्द्रसेन 'विराट' और आनन्द मिश्र आदि गीतकार प्रणय, प्रकृति और मानवता के गीत गाते हुए गीत-काव्य की समृद्धि मे महत्वपूर्ण योगदान कर रहे हैं।

कई काव्य-युगो की यात्रा के बाद अब खड़ीबोली इतनी समृद्ध हो गयी है कि वह सूक्ष्म से सूक्ष्म भावतरंगों को रूपायित करने मे समर्थ है। आधुनिक युग के नये कवियो द्वारा उसके इसी सामर्थ्य की परीक्षा की जा रही है। और अभि-व्यक्ति शिल्प के क्षेत्र मे नये से नये प्रयोग हो रहे हैं। अद्यतन वर्तमान युग नयी कविता और अकविता आदि के स्थापना-संघर्ष का युग है। इसी संघर्ष मे से भविष्य की कविता का जन्म होगा।

रामेश्वर शुक्ल
'अंचल'
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर

प्रगुणा श्री.

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

उपाध्याय जी का जन्म संवत् १९२२ में हुआ। आप हिंदी, संस्कृत, उर्दू, फारसी के पूर्ण पण्डित थे। अंग्रेजी का भी अच्छा ज्ञान रखते थे। सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहणकर आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य आरम्भ किया। सरकारी नौकरी में रहते हुए भी आपने साहित्य-सेवा की और अखिल भारतीय ख्याति के अधिकारी हुए। काव्य के क्षेत्र में आपकी प्रतिभा बहुमुखी थी।

'प्रियप्रवास' हरिऔध जी का पहिला महाकाव्य है। जिसने उनकी महत्ता हिन्दी संसार में स्थापित की। अतुकान्त छन्दों में लिखा गया यह हिन्दी का श्रेष्ठ महाकाव्य है जो रस-वर्णन और भावों के अनूठेपन में आज भी अपना सानी नहीं रखता। इसमें करुण रस के ऐसे हृदय-द्रावक स्थल हैं कि पढ़ते-पढ़ते हृदय भर आता है और बहुत से भावुक जनों को अवरुद्ध कंठ हो अश्रुधारा बहाते भी देखा गया है। कृष्ण के वियोग से पीड़ित न केवल माता यशोदा, गोप, गोपियों, ग्वाल-बालों की मनोव्यथा का मर्मस्पर्शी चित्रण है बरन पशु, पक्षी, वृक्ष-लताओं तक का करुणामंडित वर्णन किया गया है। भाषा की संस्कृतनिष्ठता और कोमलकान्त-पदावली पढ़ने वाले को रसनिमग्न कर देती है।

हरिऔध जी का भाषा पर असाधारण अधिकार था। कठिन से कठिन और सरल से सरल भाषा आप समान गति से लिखते थे। रोजमर्रा की बोल-चाल वाली मुहावरों की भाषा में आपने बहुत सी कवितायें लिखी है जो 'चोखे चौपदे' और 'चुभते चौपदे' नामक संकलनों में संकलित हैं। इस प्रकार खड़ी-बोली की अभिव्यञ्जना शक्ति बढ़ाने में आपकी काव्य-साधना ने योग दिया है।

"रह गया फूल ही नहीं" अब तो।
सज सकेंगी न पास की फूलियाँ॥
साथ किसके फबन दिखा अपनी।
रंगरलियाँ मनायेंगी कलियाँ॥ ५॥

रोज के सैंकड़ों बखेड़ों में।
वे न जाये बुरी तरह फाँसे॥
है खिलाती खुली हवा उनको।
फूल है ओस बूंद के प्यासे॥ ६॥

है न गोरा वदन पसंद उसे।
है न भाती कलाइयाँ न्यारी॥
क्यो न उसमे भरे रहे काँटे।
है हरी डाल फूल को प्यारी॥ ७॥

फूल से पूछता अगर कोई।
तो विहँस वह यही बता पाता॥
काम के है महल न सोने के।
है हमे वन हरा-भरा भाता॥ ८॥

है न गहने पसंद सोने के।
है न हीरे जड़े मुकुट भाते॥
है लुभाते उन्हें हरे पत्ते।
है कली देख फूल खिल जाते॥ ९॥

चाह उसको न मंदिरों की है।
वह मठों से न रख सका नाते॥
फूल का प्यार क्यारियों से है।
है बगीचे उसे बहुत भाते॥ १०॥

कोकिल

चौपदे

वने रहते हो मतवाले।
कौन से मद से माते हो॥
रात भर जाग-जाग करके।
कौन सा मंत्र जगाते हो॥ १ ॥

आम की डाली पर बैठे।
बोलते नहीं अघाते हो॥
बौर को देख-देख करके।
बावले क्यों बन जाते हो॥ २ ॥

किस तरह से किससे सीखे।
गले मे इतना रस आया॥
कौन सा पाठ कंठ करके।
गला इतना मीठा पाया॥ ३ ॥

बोलियाँ बोल-बोल प्यारी।
कान में रस बरसाते हो॥
गँवाकर तन की सुधि सारी।
गीत किसका तुम गाते हो॥ ४ ॥

कूकते हो जब कू-कू कर।
याद किसकी तब आती है॥
किसी की छिपी हुई सूरत।
क्या झलक दिखला जाती है॥ ५ ॥

भोर के समय खोल कर कर दिल।
बोलने तुम क्यों लगते हो॥

अछूता क्यों न उसे छोड़ें।
जवानी की छिछली छूतें॥
हिला दे क्यो समाज का दिल।
किसी की काली करतूतें॥ ७॥

रँगरलियो में जो डूबी।
जायें जल ऐसी सुख चाहें।
लगा दे आग देश में जो।
खुले क्यो ऐसी रस राहें॥ ८॥

पड़े जिस पर भद्दे धब्बे।
वह चलन चादर चिथड़े हो॥
बने जिससे पड़ोस गदे।
क्यो न वह तन सौ टुकड़े हो॥ ९॥

मन उड़ा-उड़ा फिरे जिससे।
जाय जिससे तन में लग घुन॥
उमगों भरे किसी जी में।
समा जाये क्यो ऐसी धुन॥१०॥

धुनों पर क्यों मतवाली हो।
क्यों न सुर तालो को जाँचे॥
किसी बेसुरे राग पर क्यो।
चाहने नंगी हो नाचे॥११॥

मैथिलीशरण गुप्त

गुप्तजी वर्तमान युग के हिन्दी कवियों में सर्वाधिक लोकप्रिय और ख्यातिलब्ध हैं। आपका जन्म सम्वत् १९४३ में हुआ। आपका हिन्दी वंगला और संस्कृत का ज्ञान विशद था। आपकी साहित्य-साधना अविराम गति से आजीवन चलती रही और आज का कोई कवि परिमाण में भी आपकी समता नहीं कर सकता। उच्च श्रेणी और मध्यश्रेणी के विद्यार्थियों और नवयुवकों में आपकी कविता ने भाषा और काव्य के प्रति अनुराग उत्पन्न किया है। देशप्रेम और राष्ट्रीयता की भावना को व्यापक बनाने में आपकी कविता का बड़ा हाथ रहा है। राष्ट्रीय कविता से रचना का आरम्भ कर अपने काव्य के प्रसार और देश-व्यापिनी सर्वप्रियता के कारण आप निर्विवाद राष्ट्रकवि कहे जाते थे।

गुप्त जी द्वारा लिखित मौलिक और अनुवादित ग्रन्थों की संख्या ४० के लगभग है। इनमें कुछ नाटक और स्फुट रचनाओं के संग्रह भी है। आपके आरम्भिक काव्य-ग्रन्थों में भारत-भारती ने नवयुवकों में बहुत मान पाया था। उनमें जाति गौरव के अभिमान को जाग्रत कर उन्हें राष्ट्रीयता की भावना से आपने अनुप्राणित किया था। भाषा का प्रवाह, क्रिया-पदों का परिष्कृत रूप और शैली की सरल सुबोधता इस खंडकाव्य की विशेषता है। कवित्व की रमणीयता और रसप्लावन की दृष्टि से जयद्रथ-बध ने हिन्दी खंडकाव्यों में ऊंचा स्थान पाया। फिर तो रंग में भंग, शकुन्तला, पंचवटी आदि खंडकाव्यों ने जनता को मोहित कर लिया और गुप्तजी की कविता-पुस्तकें नवयुवकों का हृदय-हार बन गई। पंचवटी में आदर्श की पूजा के साथ-साथ कवि ने प्रकृति के सौन्दर्य का जो वर्णन किया है वह अपूर्व है। भाषा की दृष्टि से भी कवि की रचनाओं में व्यवस्थित और सुन्दर क्रम मिलता है। शुरू से गुप्तजी ने जैसी

शुद्ध और व्याकरण सम्मत भाषा लिखने की शैली चलाई वह बराबर निखरती गई और आज वह अपने पूर्ण रूप में आ गई है।

खंडकाव्य, महाकाव्य, गीतकाव्य, आदि कविता के लगभग सभी रूप उनके साहित्य में मिलते है। छंदों की विविधता और अलंकार योजना में उनकी मौलिकता प्रशंसनीय है। द्वापर, यशोधरा, गुरुकुल, सिद्धराज, जयभारत, विष्णुप्रिया, पृथ्वीपुत्र आदि आपके अन्य महत्वपूर्ण काव्य-ग्रन्थ हैं।

आपका देहावसान सम्वत् २०२१ में हुआ।

उर्मिला-लक्ष्मण-मिलन

पाकर अहा उमंग उर्मिला अंग भरे थे,
आली ने हँस कहा, "कहाँ ये रंग भरे थे?
सुप्रभात है आज स्वप्न की सच्ची माया!
किन्तु कहाँ वे गीत, यहाँ जब श्रोता आया॥
फड़क रहा है वाम नेत्र, उच्छ्वसित हृदय है,
अब भी क्या तन्वंगि तुम्हे संशय या भय है?
आओ, आओ, तनिक तुम्हे श्रिंगार सजाऊँ,
बरसों की मैं कसक मिटाऊँ बलि-बलि जाऊँ॥"
'हाय सखी श्रृंगार? मुझे अब भी सोहेंगे?
क्या वस्त्रालंकार मात्र से वे मोहेंगे?
मैंने जो वह 'दग्धवर्त्तिका' चित्र लिखा है,
तू क्या उसमें आज उठाने चली शिखा है?
नहीं, नहीं प्राणेश मुझी से छले न जावें,
जैसी हूँ मैं नाथ मुझे वैसा ही पावें,
शूर्पणखा मैं नहीं—पाय तू तो रोती है,
अरी, हृदय की प्रीति हृदय पर ही होती है॥'

'किन्तु देख यह वेश दुखी वे होगे कितने?'
'तो ला भूषण-वस्त्र, इष्ट हो तुझको जितने।
पर यौवन-उन्माद कहाँ से लाऊँगी मै?
वह खोया धन आज कहाँ सखि पाऊँगी मै?
अपराधी-सा आज वही तो आने को है,
वरसों का यह दैन्य सदा को जाने को है।'
'कल रोती थी, आज मान करने बैठी हो,
कौन राग यह, जिसे गान करने बैठी हो?'
'न रवि को पाकर पुन. पद्मिनी खिल जाती है,
पर वह हिम-कण बिना कहाँ शोभा पाती है?'
'तो क्या आँसू नही, सखी, अब इन आँखों मे?
फूटे, पानी न हो बड़ी भी जिन आँखो मे॥'
'प्रीति स्वाति का पिया शुक्ति बन बनकर पानी,
राजहंसिनी, चुनो रीति-मुक्ता अब रानी!'
'विरह रुदन मे गया, मिलन में भी मैं रोऊँ,
मुझे और कुछ नही चाहिए, पद-रज धोऊँ,
जब थी तब थी, आलि, उर्मिला उनकी रानी,
वह वरसो की बात आज हो गई पुरानी।
अब तो केवल रहूँ सदा स्वामी की दासी,
मैं शासन की नही आज सेवा की प्यासी॥
युवती हो या, आलि, उर्मिला बाला तन से,
नही जानती किन्तु स्वयं क्या है वह मन से!
देखूँ, कह प्रत्यक्ष आज अपने सपने को,
या सज बजकर आप दिखाऊँ मै अपने को?
सखि, यथेष्ट है यही धुली धोती ही मुझको,
लज्जा उनके हाथ व्यर्थ चिन्ता है तुझको!

उछल रहा यह हृदय, अंक मे भर ले, आली,
निरख तनिक तू आज ढीठ संध्या की लाली॥
मान करूँगी आज? मान के दिन तो बीते,
फिर भी पूरे हुए सभी मेरे मन-चीते!
टपक रही वह कुंज-शिला वाली शेफाली
जा नीचे, दो चार फूल चुन, ले आ डाली॥
वनवासी के लिए सुमन की भेंट भली वह?'
'किन्तु उसे तो कभी पा चुका, प्रिये, आली यह!
देखा प्रिय को चौंक प्रिया ने, सखी किधर थी?
पैरों पड़ती हुई उर्मिला हाथों पर थी॥
लेकर मानो विश्व-विरह उस अन्तःपुर में,
समा रहे थे एक दूसरे के वे उर में।
रोक रही थी उधर मुखर मैना को चेरी,
'यह हत हरिणी छोड़ गये क्यों, नये अहेरी?'
'नाथ, नाथ क्या तुम्हे सत्य ही मैंने पाया।'
'प्रिये, प्रिये, हाँ आज-आज ही वह दिन आया!
मेघनाद की शक्ति सहन करके यह छाती,
अब भी क्या इन पाद-पल्लवों से न जुड़ाती?
मिला उसी दिन किन्तु तुम्हें मै खोया खोया,
जिस दिन आर्या बिना आर्य का मन था रोया।
पूर्ण रूप से, सुनो, तुम्हें मैंने कब पाया,
जब आर्या का हनुमान ने हाल सुनाया!
अब तक मानों जिसे वेश-भूषा मे टाला,
अपने को ही आज मुझे तुमने दे डाला।
आँखों मे ही रही अभी तक तुम थी मानो,
अंतस्तल मे आज अचल निज आसन जानो॥

परिधि-विहीन सुधांशु-दृश्य संताप-विमोचन,
धूलि रहित, हिम धौत; सुमन सा लोचन-रोचन।
अपनी द्युति से आप उदित आडम्बर त्यागे,
धन्य अनावृत प्रकृत रूप यह मेरे आगे॥
जो लक्ष्मण था एक तुम्हारा लोलुप कामी
कह सकती हो आज उसे तुम क्या अपना स्वामी?'
'स्वामी, स्वामी, जन्म जन्म के स्वामी मेरे!
किन्तु कहाँ वे अहोरात्र, वे साँझ सवेरे!
खोई अपनी, हाय! कहाँ वह खिल-खिल खेला?
प्रिय, जीवन की कहाँ आज वह चढ़ती वेला?'
काँप रही थी देह-लता उसकी रह रह कर,
टपक रहे थे अश्रु कपोलों पर वह वह कर।
'वह वर्षा की बाढ़ गई उसको जाने दो।
शुचि गम्भीरता, प्रिये, शरद् की यह आने दो॥
धरा-धाम को रामराज्य की जय गाने दो,
लाता है जो समय, प्रेम पूर्वक लाने दो॥'

(साकेत से)

यशोधरा

सखि, वे मुझसे कहकर जाते।
कह तो, क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते?

मुझको बहुत उन्होंने माना,
फिर भी क्या पूरा पहचाना?
मैंने मुख्य उसी को जाना,

जो वे मन में लाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को, प्राणों के पग में,
हमीं भेज देती है रण मे,
क्षात्र-धर्म के नाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

हुआ न यह भी भाग्य अभागा,
किस पर विफल गर्व अब जागा?
जिसने अपनाया था, त्यागा,
रहे स्मरण ही आते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

नयन उन्हें है निष्ठुर कहते
पर इनसे जो आँसू बहते,
सदय हृदय वे कैसे सहते?
गये तरस ही खाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

जायँ, सिद्धि पावें वे सुख से।
दुखी न हों इस जन के दुख से,
उपालम्भ दूँ मैं किस मुख से?
आज अधिक वे भाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

गये, लौट भी वे न आवेंगे।
कुछ अपूर्व अनुपम लावेंगे।
रोते प्राण उन्हें पावेंगे?

पर क्या गाते-गाते ?
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।
(यशोधरा से)

कुणाल-गीत

संगिनि, तू फिर सिसकी ?
कहाँ रहें, क्या करें आज हम; वृथा भावना इसकी,

जाग सँभाल तनिक अपने को, जाने दो अब उस सपने को !
हटा हाथ से वे निज अलकें, जो पलकों पर खिसकी।
संगिनि तू फिर सिसकी !

हुई धूप भी मुझको छाया, गई आप ही मिथ्या-माया,
आज हमारी चिन्ता सबको, हमें नही जिस-तिसकी।
संगिनि तू फिर सिसकी।

हम में कुछ छल-छिद्र नही है, सदय स्वदेश दरिद्र नही है।
वसुधा विपुल, समाज सुसंस्कृत, कह फिर बाधा किसकी।
संगिनि तू फिर सिसकी।

अब क्या हम सुख से न रहेंगे, सबकी सुन अपनी न कहेगे ?
भिक्षुक भी राजा हूँगा मै, तुझ-सी रानी जिसकी।
संगिनि तू फिर सिसकी !

हम बाहर हों अथवा घर में, अपना धन है अपने कर मे।
आ; हँस कर ही करे उपेक्षा, निठुर नियति की रिसकी।
संगिनि तू फिर सिसकी।

मातृ-मूर्ति

जय जय भारत-भूमि भवानी
अमरों ने भी तेरी महिमा वारम्बार बखानी !
तेरा चन्द्र-वदन वर विकसित शान्ति-सुधा बरसाता है,
मलयानिल विश्वास निराला नवजीवन सरसाता है।
हृदय हरा कर देता है यह अंचल तेरा धानी,
जय जय भारत-भूमि भवानी !
उच्च-हृदय-हिमगिरि से तेरी गौरव-गंगा बहती है,
और करुण कालिन्दी हमको प्लावित करती रहती है।
मौन मग्न हो रही देखकर सरस्वती-विधि-वाणी,
जय जय भारत-भूमि भवानी !
तेरे चित्र विचित्र विभूषण है फूलों के हारों के,
उन्नत-अम्बर आतपत्र में रत्न जड़े है तारों के,
केशों से मोती झरते हैं या मेघों से पानी ?
जय जय भारत-भूमि भवानी !
वरद-हस्त हरता है तेरे शक्ति शूल की सब शंका,
रत्नाकर, रसने, चरणों में अब भी पड़ी कनक लंका !
सत्य-सिंह-वाहिनी बनी तू विश्व पालिनी रानी,
जय जय भारत-भूमि भवानी !
करके मा, दिग्विजय जिन्होंने विदित विश्वजित योग किया,
फिर तेरा मृत्पात्र मात्र रख सारे धन का त्याग किया।
तेरे तनय हुए है ऐसे मानी, दानी, ज्ञानी,
जय जय भारत-भूमि भवानी !
तेरा अतुल अतीत काल है आराधन के योग्य समर्थ,
वर्तमान साधन के हित है और भविष्य सिद्धि के अर्थ।
मुक्ति मुक्ति की युक्ति, हमे तू रख अपना अभिमानी,
जय जय भारत-भूमि भवानी !

माखनलाल चतुर्वेदी

आपका जन्म सम्वत् १९५४ को हुआ। आप खड़ी बोली की कविता के स्तंभों में से थे। गांव के मदरसे में शिक्षा-प्राप्त करने के बाद आपने नार्मल पास किया और अध्यापक हो गये थे। हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी और मराठी के भी आप अच्छे ज्ञाता थे। स्वाधीनता-आंदोलन में आप तीन बार जेल गये थे और देशभक्ति के लिये सहर्ष यातनाएं झेली थीं। आप प्रथम श्रेणी के पत्रकार और वक्ता थे। कृष्णार्जुन-युद्ध आपका सफल नाटक है। चतुर्वेदी जी कर्मवीर के सम्पादक थे। इसके पूर्व प्रभा और प्रताप में भी आपने कार्य किया था। गद्य लिखने की आपकी शैली अनूठी है। साहित्य-देवता आपका गद्यकाव्य का सुन्दर ग्रन्थ है जो प्रशंसित हुआ है।

चतुर्वेदीजी की प्रतिभा बहुमुखी थी। उनके व्यक्तित्व के अनेक रूप थे। कविता में आपने अपनी स्वतंत्र धारा बहायी है। भावों की मधुरता और उक्ति-वैचित्र्य आपके विशेष गुण है। आपका उपनाम 'एक भारतीय आत्मा' आपकी भावपूर्ण राष्ट्रीय कविताओं द्वारा पूर्णरूप से सार्थक हुआ है। आपकी कुछ अमर-कृतियां कारागार प्रवास में रची गई है।

चतुर्वेदी जी की भाषा में गुप्तजी या हरिऔधजी की भाषा जैसी व्यवस्था भले न हो पर उसमें विचित्र मिठास है। बोलचाल के उर्दू शब्दों का भी आपने खुलकर प्रयोग किया है। देश में राष्ट्रीय चेतना फैलाने और राष्ट्र-पूजा की भावना जगाने में आपकी कविता ने बड़ा काम किया था। प्रेम, आनन्द, उल्लास, नैराश्य, वीरत्व और देशभक्ति सब आपकी कविता में मिलते है। भाषा का निराला बांकापन देखते ही बनता है। हिमकिरीटनी, हिम-तरंगिणी, युग-चरण,

समर्पण, वेणु लो गूँजे धरा, माला आपके कविता-संग्रह हैं। आप अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सभापति हुए थे।

चतुर्वेदी जी की कविता में कहीं-कहीं रहस्यवाद की झलक पायी जाती है। उन्होंने देश के यथार्थ जीवन को देखा और समझा था। राष्ट्रीय कविताओं के साथ-साथ कवि ने कुछ प्रेमानुभूति की कविताएँ भी लिखी हैं और कहीं-कहीं वे दार्शनिक बनकर जीवन के रहस्य की जिज्ञासा का भाव झलकाते हैं।

आपका देहावसान सम्वत् २०२५ में हुआ।

नव-स्वागत

तुम बढ़ते ही चले मृदुलतर जीवन की घड़ियाँ भूले,
काठ छेदने लगे, सहसदल की नव-पंखुड़ियाँ भूले।
मन्द पवन संदेश दे रहा हृदय-कली पथ हेर रही,
उड़ो मधुप! नन्दन की दिशि में ज्वालाएँ घर घेर रही।

तरुण तपस्वी आ तेरा,
कुटिया मे नव-स्वागत होगा।
दोपी तेरे चरणो पर, फिर,
मेरा मस्तक नत होगा।

बेटी की विदा

आज वेटी जा रही है
मिलन और वियोग की दुनिया नवीन बसा रही है
मिलन, यह जीवन-प्रकाश, वियोग, यह युग का अँधेरा
उभय-दिशि कादम्बिनी अपना अमृत बरसा रही है

यह क्या कि इस घर में वजे थे वे तुम्हारे प्रथम पैंजन
यह क्या कि इस आँगन सुने थे वे सजीले मृदुल रुनझुन
यह क्या कि इस वीथी तुम्हारे तोतले से बोल फूटे
यह क्या कि इस वैभव वने थे चित्र हँसते और रूठे

आज यादों का खजाना, याद भर रह जायगा क्या
यह मधुर प्रत्यक्ष सपनो के वहाने जायगा क्या?

गोदी के बरसों को धीरे-धीरे भूल चली हो रानी
वचपन की मधुरीली कूको के प्रतिकूल चली हो रानी
छोड़ जाह्नवी-कूल, नेह-धारा के कूल चली हो रानी
मैने झूला बाँधा है, अपने घर झूल चली हो रानी।

मेरा गर्व समय के चरणों पर कितना बेवस लोटा है
मेरा वैभव, प्रभु की आज्ञा पर कितना-कितना छोटा है
आज उसाँस मधुर लगती है और सांस कटु है, भारी है
तेरे विदा-दिवस पर हिम्मत ने कैसी हिम्मत हारी है।

कैसा पागलपन है मै वेटी को भी कहता हूँ वेटा
कडवे-मीठे स्वाद विश्व के स्वागत कर सहता हूँ बेटा
तुझे बिदा कर एकाकी, अपमानित-सा रहता हूँ वेटा
दो आंसू आ गये समझता हूं उनमें वहता हूँ बेटा!

बेटा आज बिदा है तेरी, बेटी आत्म-समर्पण है यह
जो बेवस है, जो ताडित है, उस मानव ही का प्रण है यह!

सावन आवेगा, क्या बोलूँगा हरियाली से कल्याणी
भाई-बहिन मचल जायेगे ला दो घर की जीजी रानी
मेहदी और महावर मानो सिसक-सिसक मनुहार करेंगी
बूढ़ी सिसक रही सपनों में यादे किसको प्यार करेंगी?

दीवाली आयेगी, होली आयेगी, आवेंगे उत्सव
'जीजी रानी साथ रहेंगी' बच्चों के यह कैसे संभव ?
भाई के जी में उट्ठेगी कसक, सखी सिसकार उठेगी
मा के जी में ज्वार उठेगी बहिना कहीं पुकार उठेगी !
तब क्या होगा झूम-झूम कर जब बादल बरस उठेंगे रानी
कौन रहेगा उठो अरुण तुम सुनो और मैं कहूं कहानी
कैसे चाचा जी बहलायें, चाची कैसे बाट निहारें
कैसे अण्डे मिले लौट कर, चिड़ियां कैसे पंख पसारें ?
आज बासन्ती दृगों बरसात जैसे छा रही है
मिलन और वियोग की दुनियां नवीन बसा रही है ॥
आज बेटी जा रही है ॥

मुक्त गगन है, मुक्त पवन है

मुक्त गगन है, मुक्त पवन है, मुक्त सांस गरवीली,
लाँघ सात लाँबी सदियों की हुई शृंखला ढीली।
टूटी नहीं कि लगा अभी तक उपनिवेश का दाग
बोल तिरंगे तुझे उड़ाऊँ याकि जगाऊँ आग ?
उठ रणराते, ओ बलखाते, विजयी भारतवर्ष
नक्षत्रों पर बैठे पूर्वज माप रहे उत्कर्ष।
ओ पूरब के प्रलयी पंथी, ओ जग के सेनानी
होने दे भूकम्प कि तूने, आज भृकुटियां तानी।
नभ तेरा है ?—तो उडते है वायुयान ये किसके ?
भुज-वज्रों पर मुक्ति-स्वर्ण को देख लिया है कसके ?

तीन ओर सागर तेरा है, लहरें दौड़ी आती
चरण, भुजा, कटिवन्ध देश तक वे अभिषेक सजाती।
क्या लहरों से खेल रहे वे है जलयान तुम्हारे
नही ? अरे तो हटे न अव तक लहरों के हत्यारे ?
वह छूटी-बन्दूक, गोलियाँ क्या उवार है आई
तो हमने किसकी करुणा से यह आजादी पाई ?
उठ पूरव के प्रहरी, पश्चिम जाँच रहा घर तेरा
सावित कर तेरे घर पहले होता विश्व-सवेरा ?
तुझ पर पड़ जो किरणें जूठी हो जाती, जग पाता।
जीने के ये मत्र सूर्य से सीखो भाग्य-विधाता।
सूझों में सांसो मे, संगर मे, श्रम में, ज्वारो में
जीने में, मरने में, प्रतिभा मे आविष्कारो में
सागर की वाँहे लाँघे है तट-चुम्वित भू-सीमा
तू भी सीमा लाँघ, जगा एशिया, उठा भुज-भीमा
वह नेपाल प्रलय का प्रहरी, वह तिब्बत सुर-धामी
वह गाधार युगों का साथी, वीर सोवियत नामी।
तुझे देख उन्मुक्त आज ये उन्नत बोल रहे है
चीन, तिब्वत, वर्मा, जावा के मस्तक डोल रहे है।
आज हो गई धन्य प्रवल, हिन्दी वीरो की भाषा
कोटि-कोटि सिर कलम किये फूली उसकी अभिलाषा।
जग कहता है तू विशाल है, तू महान, जय तेरी
लोक-लोक से वरस रही तुझ पर पुष्पो की ढेरी।
तीन तरफ सागर की लहरे जिसका वनें वसेरा
पतवारो पर नियति सजाती जिसका साँझ-सवेरा,

बनती हों मल्लाह-मुट्ठियाँ सतत भाग्य की रेखा
रत्नाकर रत्नों का देता हो टकराकर लेखा,
उस लहरीले घर के झण्डे देश-देश में लहरें
लहरों से जाग्रत नर-प्रहरी कभी न रुक कर ठहरें।

उठता हो आकाश, हिमालय दिव्य द्वार हो अपना
सागर हो विजया माँ तेरा उस परसों का सपना।

चिन्तक, चिन्ताधारा तेरी आज प्राण पा बैठी
रे योद्धा प्रत्यञ्चा तेरी, उठ कि बाण पा बैठी।

लाल किले का झण्डा हो, अंगुलि-निर्देश तुम्हारा
और कटे धड वाला अर्पित तुमको देश तुम्हारा।

धड से धड को जोड बना तू भारत एक अखण्डित
तेरे यश का गान करेंगे प्रलय-नाद के पंडित।

ब्रिटिश राज टुकडे-टुकडे है क्या समाज का भय है
उठ कि मसल दे शिथिल रूढ़ियां तेरी आज विजय है।

तोड अमीरों के मनसूबे, गिन न दिनों की घडियाँ
बुला रही है, तुझे देश की कोटि-कोटि झोपडियाँ।

मिले रक्त से रक्त, मने अपना त्योहार सलोना
भरा रहे अपनी बलि से माँ की पूजा का दोना।

हथकड़ियोंवाले हाथो है, शत-शत वन्दनवारें
और चूडियों की कलाइयाँ उठ आरती उतारें।

हों उन्हीं दुनियां के हाथों कोटि-कोटि जयमाला
मस्तक पर दायित्व, हृदय में वज्र, दृगों में ज्वाला।

तीस करोड धडों पर गर्वित, उठे, तने, ये शर हैं
तुम संकेत करो, कि हथेली पर शत-शत हाजिर है।

रामनरेश त्रिपाठी

आपका जन्म संवत् १९४६ में हुआ। द्विवेदी-युग की प्रेरणाओं और प्रभावों में पले रामनरेश त्रिपाठी को उस सहज स्वच्छन्दतावाद का कवि कहा जा सकता है जिसका प्रवर्तन पं० श्रीधर पाठक द्वारा हुआ था। पथिक, मिलन एवं स्वप्न जैसे अनूठे खंड काव्य के रचयिता के रूप में त्रिपाठी जी ने हिन्दी में अमरख्याति अर्जित की है। उनकी स्फुट कविताएं संख्या में अधिक नहीं हैं और उनका केवल एक संकलन मानसी ही प्रकाशित हुआ है परन्तु वे सबकी सब भावों की गहराई और मार्मिकता के कारण अपनी प्रभाववत्ता में सफल हैं। देशप्रेम, स्वतंत्रता के लिए आत्मबलिदान, पराधीनता की कसक और शोषितों के प्रति गहरी सहानुभूति त्रिपाठी जी के खंड काव्यों की मूल प्रेरणा है। भारत-भारती के बाद सम्भवतः उनके पथिक खंड काव्य ने ही उस युग में नवयुवकों में राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत कर पथिक के समान शासन की निरंकुशता से सतत संघर्ष कर प्राणोत्सर्ग की भव्य प्रेरणा प्रदान की थी। प्रकृति के सौन्दर्य के प्रति त्रिपाठीजी की भावुक दृष्टि एक सच्चे स्वच्छन्दतावादी कवि की दृष्टि है जो उनके खंड काव्यों में और स्फुट कविताओं में बराबर झलकती है। गांधीवाद का त्रिपाठी जी की कविताओं पर पूर्ण प्रभाव है और पथिक के चरित्र में एक अहिंसक क्रान्तिकारी का भावोद्दीप्त स्वरूप अंकित हुआ है। मिलन और स्वप्न में कल्पित आख्यानों के द्वारा देश-प्रेम और आक्रमणकारी शत्रु से युद्ध कर अपनी स्वाधीनता की सुरक्षा का सन्देश सुनाया गया है।

त्रिपाठी जी उपन्यासकार और नाटककार भी थे। उनके द्वारा सम्पादित कविता कौमुदी के आठ भाग हिन्दी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं।

आपका देहावसान सम्वत् २०१८ में हुआ।

उद्बोधन

मृगमारा-विहरित कल कोकिल-कूजित कुसुमित वन को।
ललित लहलही लता-लसित अलि-मुखरित कुंज-भवन को।
तृण-संकुलित हरित वसुमति गिरि लहर उदधि नभ घन को।
देख हुआ कौतूहल, अति आश्चर्य तुम्हारे मन को॥
देख जिन्हे निस्पन्द हुऐ हो त्याग कर्म-संगर को।
हुए तुम्हारे लिए कभी स्थिर वे भी क्या पलभर को?
अपनी अद्भुत शक्ति भूल अज्ञानी-सा वन-वन में।
फिरते हो तुम चकित विमोहित प्रकृति-रूप-दर्शन मे॥
जग में सचर-अचर जितने है सारे कर्म-निरत हैं।
धुन है एक न एक सभी को सबके निश्चित व्रत हैं।
जीवन भर आतप सह वसुधा पर छाया करता है।
तुच्छ पत्र की भी स्वकर्म में कैसी तत्परता है॥
सिन्धु-विहग तरंग-पंख को फड़काकर प्रति क्षण में।
है निमग्न नित भूमि-खण्ड के सेवन में रक्षण मे।
कोमल मलय-पवन घर-घर मे सुरभि बाँट आता है।
शस्य सीचने घन जीवन धारण कर नित जाता है॥
रवि जग मे शोभा सरसाता सोम सुधा बरसाता।
सब है लगे कर्म मे कोई निष्क्रिय दृष्टि न आता।
है उद्देश्य नितान्त तुच्छ तृण के भी लघु जीवन का।
उसी पूर्ति में वह करता है, अन्त कर्ममय तन का॥
तुम मनुष्य हो, अमित बुद्धि-बल-विलसित जन्म तुम्हारा।
क्या उद्देश्य-रहित है जग मे तुमने कभी विचारा?
बुरा न मानो, एक बार सोचो तुम अपने मन में।
क्या कर्तव्य समाप्त कर लिये तुमने निज जीवन में॥

जिस पर गिरकर उदर-दरी से तुमने जन्म लिया है।
जिसका खाकर अन्न सुधा-सम नीर समीर पिया है।
जिस पर खड़े हुए, खेले, घर बना बसे, सुख पाये।
जिसका रूप विलोक तुम्हारे दृग, मन, प्राण जुड़ाये।।
वह सनेह की मूर्ति दयामयि माता-तुल्य मही है।
उसके प्रति कर्त्तव्य तुम्हारा क्या कुछ शेष नही है?
हाथ पकड़कर प्रथम जिन्होंने चलना तुम्हे सिखाया।
भाषा सिखा हृदय का अद्भुत रूप स्वरूप दिखाया।।
जिनकी कठिन कमाई का फल खाकर बड़े हुए हो।
दीर्घ देह ले बाधाओं में निर्भय खड़े हुए हो।
जिनके पैदा किये, बुने वस्त्रों से देह ढके हो।
आतप-वर्षा-शीत-काल में पीड़ित हो न सके हो।।
क्या उनका उपकार-भार तुम पर लवलेश नही है?
उनके प्रति कर्त्तव्य तुम्हारा क्या कुछ शेष नही है?
सतत ज्वलित दुख-दावानल में जग के दारुन रन में।
छोड उन्हें कायर बनकर तुम भाग बसे निर्जन में।।
केवल सुनकर कष्ट, तुम्हारा विचलित हुआ हृदय है।
मनुष्यता के लिये घोर लज्जा, अति निन्द्य विषय है।
शुद्ध प्रेम के मर्म, प्रेम की महिमा से परिचित हो।
प्रेम मार्ग में पथिक, प्रेम-पीडा से व्याकुल-चित हो।।
तुम्हे उचित था तुम उदार बनकर घर-घर मे जाते।
अमित प्रेम-निधि एक-एक प्राणी को मुफ्त लुटाते।
किन्तु कृपण बन सब समेट सानन्द स्वयं रहते हो।
इस पर भी तुम स्वार्थ-ग्रसित कुत्सित जग को कहते हो।।
केवल अपने लिए सोचते मौज भरे गाते हो।
पीते, खाते, सोते, जगते, हँसते, सुख पाते हो।

जग से दूर स्वार्थ-साधन ही सतत तुम्हारा यश है।
सोचो तुम्हीं, कौन जन जग में तुम-सा स्वार्थ-विवश है॥
सद्गुण, साहस, सत्य, शूरता, लोकोत्तर उत्तमता।
पौरुष, प्रतिभा, प्रीति, प्राण, प्रभुता, पर-पालन-क्षमता।
क्षमा, शान्ति, करुणा, उदारता, श्रद्धा, भक्ति, विनयिता।
सज्जनता, शुचिता, मनस्विता, मेधा, मन-निर्भयता॥
यह सम्पत्ति धरोहर प्रभु की तुम्हें मिली धरने को।
अवसर पर प्रस्तुत रख जग-हित मे वितरण करने को।
सो तुम सकल चुराकर जग से भाग बसे निर्जन में।
प्रभु से यह विश्वासघात! करते न डरे तुम मन में॥
त्राहि-त्राहि सब ओर मची थी जहां प्राणि-मंडल में।
आँखों ने देखा क्या हित की अनुपस्थिति उस थल में?
सदुपदेश से सफल हुई क्या भाषण-शक्ति तुम्हारी?
दयावान कर सकी किसी निष्ठुर को भक्ति तुम्हारी॥
आवश्यकता की पुकार को श्रुति ने श्रवण किया है?
कहो, करों ने आगे बढ़ किसको साहाय्य दिया है?
आर्त्तनाद तक कभी पदों ने क्या तुमको पहुँचाया?
क्या नैराश्य निमग्न जनों को तुमने कंठ लगाया॥१७॥
कभी उदर ने भूखे जन को प्रस्तुत भोजन पानी—
देकर मुदित भूख के सुख की क्या महिमा है जानी?
मार्ग-पतित असहाय किसी मानव का भार उठाके।
पीठ पवित्र हुई क्या सुख से उसे सदन पहुँचा के?॥
मस्तक ऊँचा हुआ तुम्हारा कभी जाति-गौरव से?
अगर नहीं, तो देह तुम्हारी तुच्छ अधम है शव से।
भीतर भरा अनन्त विभव है उसकी कर अवहेला॥
बाहर सुख के लिए अपरिमित तुमने संकट झेला॥

जिसे प्रेम से बहुत समीप सहज ही पा सकते थे।
अन्धे-सा उसको टटोलते अब तक तुम थकते थे।
तुममें अद्भुत शक्ति अलौकिक अतिशय अधिक प्रकृति से।
कर सकते हो चकित प्रकृति को निज साधारण कृति से॥
यदि तुम अपनी अमित शक्ति को समझ काम मे लाते।
अनुपम चमत्कार अपना ही देख परम सुख पाते।
यदि उद्दीप्त हृदय में सच्चे सुख की है अभिलाषा।
वन में नही, जगत में जाकर करो प्राप्ति की आशा॥
यह संसार मनुष्य के लिए एक परीक्षा-स्थल है।
दुख है प्रश्न कठोर, देखकर होती बुद्धि विकल है।
किन्तु स्वात्म-बल-विज्ञ सत्पुरुष ठीक पहुँच अटकल से।
हल करते है प्रश्न सहज में अविरल मेधा-बल से॥
यही लोक-कल्याण-कामना, यही लोक-सेवा है।
यही अमर करने वाले यश-सुरतरु का मेवा है।
जाओ पुत्र जगत में जाओ, व्यर्थ न समय गँवाओ।
सदा लोक-कल्याण-निरत हो जीवन सफल बनाओ॥
दुख में बन्धु, वैद्य पीड़ा मे, साथी घोर विपद मे।
दुसह दीनता में आश्रय, उत्साह निराशा-नद में।
भ्रम में ज्योति, सुमति सम्पति में, दृढ़ निश्चय संशय में।
छल में क्रांति, न्याय प्रभुता मे, अटल धैर्य बन भय में॥
जनता के विश्वास, कर्म, मन, ध्यान, श्रवण, भाषण में।
वास करो, आदर्श बनो, विजयी हो जीवन-रण मे।
अति अशांत दुख-पूर्ण विशृंखल क्रांति-उपासक जग में।
रखना अपनी आत्म-शक्ति पर दृढ़ निश्चय प्रतिपग में॥
जग की विषम आँधियों के झोके सम्मुख हो सहना।
स्थिर उद्देश्य-समान और विश्वास-सदृश दृढ़ रहना।

जाग्रत नित रहना उदारता-तुल्य असीम हृदय में।
अन्धकार में शान्त चन्द्र-सा ध्रुव-सा निश्चल भय मे॥
तुम्हे स्मरण करके उदार, सद्धर्मा, सच्चरित जन हों।
पर-दुख देख दूर करने को उत्सुकतामय मन हों।
जनता सुनकर नाम तुम्हारा एक भाव में जागे।
सत्य, न्याय के संरक्षण में मुदित प्राण तक त्यागे॥
जग मे सुख की प्राप्ति के लिए एक सहायक दुख है।
वही जगाता है सद्गुण को सद्गुण लाता सुख है।
बाधा, विघ्न, विपत्ति, कठिनता, जहा-जहां सुन पाता।
सबके बीच निडर हो जाना दुख को गले लगाना॥
गोर-श्याम, उत्तम-जघन्य, कुत्सित-कुरूप सुन्दर कर।
होता नही विचार प्रेम के शासन में निज पर का।
घृणित अछूत अकिंचन जग मे जो जन है जितना ही।
तुमसे है वह प्रेम-प्राप्ति का पात्र अधिक उतना ही।
जगन्नियन्ता की इच्छा से यह संसार बना है।
उसकी ही क्रीड़ा का रूपक यह समस्त रचना है।
है यह कर्म-भूमि जीवों की, यहां कर्म-च्युत होना।
धोखे मे पड़ना अलभ्य अवसर से है कर धोना॥
एक अनन्त शक्ति वसुधा का संचालन करती है।
वह स्वतंत्र इच्छा से लय, उद्भव पालन करती है।
उसी शक्ति से यह नियमित कक्षा में टकराते हैं।
किन्तु चीरकर महाशून्य को केतु निकल जाते है॥
उसी शक्ति से सुन्दर घन से सुधा-बिन्दु झड़ता है।
करता हाहाकार वज्र पृथ्वी पर आ पड़ता है।
उसी शक्ति की सुखद प्रेरणा शुद्ध आत्म-सम्मति है।
करो उसी का कर्म उसी की नियति समस्त प्रगति है॥

पैदा कर जिस देश जाति ने तुमको पाला-पोसा।
किए हुए है वह निज हित का तुमसे बड़ा भरोसा॥
उससे होना उऋण प्रथम है सत्कर्त्तव्य तुम्हारा।
फिर दे सकते हो वसुधा को शेष स्वजीवन सारा॥
फिर कहता हूँ डरो न दुख से कर्म-मार्ग-सन्मुख है।
प्रेम-पंथ है कठिन, यहां दुख ही प्रेमी का सुख है।
कर्म तुम्हारा धर्म अटल हो, कर्म तुम्हारी भाषा।
हो सकर्म मृत्यु ही तुम्हारे जीवन की अभिलाषा॥

(पथिक से)

स्वतंत्र देश के नवयुवक

[१]

शक्ति-प्रदर्शन को जब कोई
गर्वित शत्रु प्रबल दल सजकर,
या बहु वैभव देख लोभ वश
कोई निठुर दस्यु सीमा पर
आकर धन-जन पर पड़ता है
निर्भय रण-दुन्दुभी बजाकर।
तब नवयुवक स्वतन्त्र देश के,
क्या बैठे रहते हैं घर पर?

[२]

क्रुद्ध सिंह-सम निकल प्रकट कर
अतुलित भुजबल विषम पराक्रम,
युद्ध-भूमि में वे बैरी का
दर्प दलन कर लेते हैं दम।

या स्वतन्त्रता की वेदी पर
कर देते है प्राण निछावर।
तव नवयुवक स्वतन्त्र देश के,
क्या वैठे रहते हैं घर पर।

[३]

जाता है जव फैल देश में,
कोई विषम रोग संक्रामक।
अथवा ऊपर आ पड़ता है
जब भीषण दुर्भिक्ष अचानक।
जव जनता पुकार उठती है
त्राहि-त्राहि स्वर से अति कातर।
तव नवयुवक स्वतन्त्र देश के,
क्या वैठे रहते है घर पर?

[४]

वे प्राणों का मोह छोड कर,
निशि-दिन घाम-शीत सव सहकर,
धर्मभाव से प्रेरित होकर,
भू पर सोकर भूखे रह कर;
परम सुहृद वन कर समाज की
सेवा में रहते है तत्पर।
तव नवयुवक स्वतन्त्र देश के,
क्या वैठे रहते है घर पर?

(स्वप्न से)

जयशंकर 'प्रसाद'

आपका जन्म सं० १९४६ में हुआ। घर-पर ही आपको संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू और फारसी की शिक्षा दी गई थी। प्रसादजी बड़े मनस्वी और अध्ययन-शील व्यक्ति थे। हिन्दी कविता को तो आपने श्रीसंपन्न किया ही, अपनी प्रतिभा से साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र को गौरवान्वित किया है। नवयुग के प्रवर्तकों और संस्थापकों में आपका नाम अग्रणी है।

आधुनिक हिन्दी कविता में प्रसाद जी का स्थान रहस्यवाद की अवतारणा करनेवाले कवि के रूप में अमर रहेगा। उनकी प्रसिद्धि सबसे पहले 'आँसू' के प्रकाशन के साथ हुई। कवि इस काव्य में प्रेमानुभूति को लेकर चला है और प्रेम की वास्तविकता, साधना, त्याग, आग्रह, भोग, वियोग, आत्म-विसर्जन और अधिकार, सभी-कुछ इसमें अभिव्यक्त हुए हैं। हिन्दी कविता में आँसू को जितना मान मिला है उतना कम काव्य-कृतियों को मिला होगा। 'लहर' की कविताओं में अधिक परिष्कृत सौन्दर्य-चित्रण और संयमित भावधारा है।

'कामायनी' कवि की अन्तिम महाकृति है और महाकाव्य के रूप में सामने आती है। विषय प्रतिपादन की मनोहर शैली और भाषा की प्रौढ़ता का इस महाकाव्य में मणि-कांचन संयोग है।

प्रसादजी के गीतों का सौंदर्य अपने ढंग का निराला है। उनके काव्य में जितनी स्वच्छन्दता (रोमांस) है उतना इस युग के किसी अन्य कवि में नहीं दिखती।

प्रसाद जी एक साथ दार्शनिक, इतिहासज्ञ, नाटककार, उपन्यासकार, कहानी-कार और निबन्ध-लेखक, सभी कुछ थे? उनके नाटक अपने बौद्धिक दर्शन और इतिहास की सामाजिकता के कारण हिन्दी साहित्य में अनूठे है। इन नाटकों में कवि ने चरित्र-चित्रण और घटना-क्रम में अभिनेयता के सहज कौशल

का परिचय दिया है। आर्य-संस्कृति और बौद्ध-संस्कृति दोनों का उनको पूर्ण ज्ञान था। उनके साहित्य में इसीलिये जीवन की उच्चतम प्रवृत्तियां पाई जाती हैं।

चित्राधार, झरना, महाराणा का महत्व आपके अन्य काव्य-ग्रन्थ हैं। कंकाल, तितली तथा इरावती आपके प्रसिद्ध उपन्यास और छाया, प्रतिध्वनि, आकाश-द्वीप, आँधी तथा इन्द्रजाल आपके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं। प्रसाद हिन्दी के अग्रणी नाटककार भी हैं। अजातशत्रु, स्कंदगुप्त, चन्द्रगुप्त, एक घूंट, ध्रुवस्वामिनी, कामना आदि आपकी अमर नाट्य-कृतियाँ हैं।

आपका देहावसान सम्वत् १९९४ में हुआ।

आँसू

जो घनीभूत पीड़ा थी,
मस्तक में स्मृति सी छाई।।
दुर्दिन में आँसू बन कर,
वह आज बरसने आई।
मेरे क्रन्दन में बजती,
क्या वीणा—जो सुनते हो।
धागों से इन आँसू के,
निज करुणा पट बुनते हो।
रो रो कर सिसक सिसक कर,
कहता मै करुण कहानी।
तुम सुमन नोचते सुनते,
करते जानी अनजानी।
मै बल खाता जाता था,
मोहित बेसुध बलिहारी।

अन्तर के तार खिचे थे,
तीखी थी तान हमारी।
झंझा झकोर गर्जन था,
बिजली थी नीरद-माला।
पाकर इस शून्य हृदय को,
सबने आ डेरा डाला।
घिर जातीं प्रलय घटाये,
कुटिया पर आकर मेरी।
तम चूर्ण बरस जाता था,
छा जाती अधिक अँधेरी।
बिजली माला पहने फिर,
मुसक्याती थी आँगन में।
हाँ, कौन बरस जाता था,
रस बूंद हमारे मन में।
तुम सत्य रहे चिर सुन्दर,
मेरे इस मिथ्या जग के।
थे केवल जीवन संगी,
कल्याण कलित इस मग के।
कितनी निर्जन रजनी में,
तारों के दीप जलाये!
स्वर्गंगा की धारा में,
उज्ज्वल उपहार चढाये।
गौरव था नीचे आये,
प्रियतम मिलने को मेरे।
मैं इठला उठा अकिंचन,
देखे ज्यों स्वप्न सवेरे।

मधु राका मुसक्याती थी,
पहले देखा जब तुमको
परिचित से जानें कबके,
तुम लगे उसी क्षण हमको।
परिचय राका जलनिधि का,
जैसे होता हिमकर से।
ऊपर से किरणें आती,
मिलती है गले लहर से।
मै अपलक इन नयनों से,
निरखा करता उस छवि को।
प्रतिभा डाली भर लाता,
कर देता दान सुकवि को।
निर्झर झिर झिर करता,
माधवी कुंज छाया में।
चेतना वही जाती थी,
हो मंत्र मुग्ध माया में।
पतझड़ था झाड़ खड़े थे,
सूखी सी फुलवारी मे।
किसलय नव कुसुम बिछाकर,
आये तम इस क्यारी में।
शशि मुख पर घूंघट डाले,
अन्तर मे दीप छिपाये।
जीवन की गोधूली मे,
कौतूहल से तुम आये।
घन में सुन्दर बिजली सी,
बिजली मे चपल चमक सी।

आँखों में काली पुतली,
पुतली मे श्याम झलक सी।
प्रतिमा में सजीवता सी,
बस गई सुछबि आँखो मे।
थी एक लकीर हृदय मे,
जो अलग रही लाखो मे।
माना कि रूप सीमा है,
सुन्दर! तव चिर-यौवन में।
पर समा गये थे मेरे,
मन के निस्सीम गगन में।
लावण्य शैल राई सा,
जिस पर वारी बलिहारी।
उस कमनीयता कला की,
सुष्मा थी प्यारी प्यारी।

मेघों के प्रति

अलका की किस विकल विरहिणी की पलकों का ले अवलम्बन ?
सुखी सो रहे थे इतने दिन कैसे, हे नीरद निकुरम्ब ?
बरस पडे क्यों आज अचानक ? सरसिज कानन का संकोच ?
अरे जलद मे भी यह ज्वाला ! झुके हुए क्यो ? किसका सोच ?
किस निष्ठुर ठण्डे हृत्तल में जमे रहे तुम बर्फ समान ?
पिघल रहे किसकी गर्मी से, हे करुणा के जीवन-प्राण ?
चपला की व्याकुलता लेकर, चातक का ले करुण कलाप ?
तारा आँसू पोंछ गगन के, रोते हो किस दुख से आप ?
किस मानस-निधि मे न बुझा था बड़वानल जिससे बन भाप ?
प्रणय कर प्रभाकर से चढ़कर इस अनन्त का करते माप ?

क्यों जुगनू का दीप जला है पथ में पुष्प और आलोक,
किस समाधि पर बरसे आँसू, किसका है यह शीतल शोक?
थके प्रवासी बनजारों-से लौटे किस मन्थर गति से?
किस अतीत की प्रणय पिपासा जगती चपला सी-स्मृति से?

बीती विभावरी जाग री !

बीती विभावरी जाग री!
अम्बर-पनघट में डुबा रही—तारा-घट ऊषा नागरी।
खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा, किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई—मधु-मुकुल-नवल-रस गागरी।
अधरों मे राग अमंद पिये, अलकों में मलयज बंद किये—
तू अब तक सोई है आली! आँखों में भरे विहाग री!

चिन्ता

ओ चिन्ता की पहली रेखा,
अरी विश्व वन की व्याली,
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण,
प्रथम कम्प सी मतवाली!
हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल लेखा!
हरी-भरी सी दौड़ धूप, ओ
जल-माया की चल रेखा!
इस ग्रह कक्षा की हलचल री
तरल गरल की लघु लहरी,

जरा अमर जीवन की, और न
कुछ सुनने वाली, बहरी!
अरी व्याधि की सूल-धारिणी!
अरी आधि, मधुमय अभिशाप!
हृदय गगन में धूमकेतु-सी,
पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप।
मनन करावेगी तू कितना?
उस निश्चित जाति का जीव,
अमर मरेगा क्या? तू कितनी
गहरी डाल रही है नीव।
आह! घिरेगी हृदय लहलहे
खेतों पर करका घन-सी,
छिपी रहेगी अंतरतम मे
सब के तू निगूढ घन-सी।
बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिंता
तेरे है कितने नाम!
अरी पाप है, तू जा, चल जा
यहाँ नही कुछ तेरा काम।
विस्तृति आ, अवसाद घेर ले
नीरवते! बस चुप कर दे,
चेतनता चल जा जड़ता से
आज शून्य मेरा भर दे।'
चिन्ता करता हूँ मै जितनी
उस अतीत की उस सुख की,
इतनी ही अनन्त में बनती
जाती रेखाएं दुख की।

गया सभी कुछ, गया मधुरतम
    सुर बालाओं का श्रृंगार,
उषा ज्योत्सना सा यौवन-स्मित
    मधुप सदृश निश्चित विहार।
भरी वासना-सरिता का वह
    कैसा था मदमत्त प्रवाह,
प्रलय-जलधि में संगम जिसका
    देख हृदय था उठा कराह।"



सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

निराला जी हिन्दी के युग-प्रवर्तक कवि माने जाते हैं। आपकी प्रतिभा व्यापक और बहुमुखी थी। गूढ़ भावों को गूढ़ और सरल दोनों प्रकार की भाषा में चित्रित करना आपकी विशेषता थी। आपकी कविता में कला का चरम विकास और उत्कर्ष मिलता है। आधुनिक युग में रहस्यवाद के आप प्रमुख स्तम्भ थे।

आपका जन्म संवत् १९५३ में हुआ था। बचपन में आप प्रतिभाशाली छात्र थे। पर आपकी पढ़ाई सुचारु रूप में चल न सकी। संगीत की ओर आपका विशेष झुकाव था। आधुनिक हिन्दी कविता में गीत-काव्य का बीज एक प्रकार से आपने ही वपन किया था। ब्रजभाषा पर भी आपका अधिकार था। जैसा कि आपके द्वारा अनुवादित गोविन्ददास पदावली को देखने से जान पड़ता है। आपके गीतों में संगीत का स्वरूप इतना पूर्ण माना जाता है कि शास्त्रीय अभिज्ञता की कसौटी पर कसने से उनमें कोई त्रुटि नहीं मिलती। आपने नये-नये छन्दों का निर्माण कर नये-नये सुरों की सरिता बहाई थी। अंग्रेजी और बंगाली साहित्य-कला का पूर्ण प्रभाव इनके साहित्य पर पड़ा है। आप उच्चकोटि के गायक भी थे।

निरालाजी के काव्य में बौद्धिकता अधिक मिलती है—भावुकता कम। यही कारण है कि कहीं-कहीं उनकी कविता इतनी गम्भीर है कि साधारण पाठक की पहुँच के बाहर हो जाती है। उनकी भाषा अर्थ की गुरुता और विराटता से दब जाती है। उनका जैसा दार्शनिक प्रकाश एक ही दो आधुनिक कवियों में मिलता है। वे हिन्दी के सबसे गम्भीर कवि थे। प्रसादजी को छोड़ कर इस दिशा में उनकी समता अन्य कोई कवि नहीं कर सकता।

अपने कथा-काव्य तुलसीदास में निराला जी ने इतिहास पर नई दृष्टि डाली है

और कवि के हृदय-संघर्ष का ऐसा सजीव चित्रण किया है कि देखते ही बनता है। परिमल, अनामिका, गीतिका, अपरा, नये पत्ते, बेला, अणिमा, कुकुरमुत्ता आदि कवि के कविता-संग्रह है, जो उनकी विविधतामयी काव्य-सृष्टि के प्रमाण हैं। नये ढंग की प्रगतिवादी कविताएं भी कवि ने लिखी हैं और उर्दू के छन्दों को भी हिन्दी में उतारा है। निरालाजी उच्च कोटि के उपन्यासकार, कहानी लेखक और निबन्धकार थे।

आपका देहावसान सम्वत् २०१८ में हुआ।

जागो फिर एक बार

समर मे अमर कर प्राण,
गान गाये महासिन्धु-से
सिन्धु-नद-तीरवासी !
सैन्धव तुरगों पर
चतुरंग-चमू-संग;
"सवा-सवा लाख पर
एक को चढाऊँगा,
गोविन्दसिंह निज
नाम जब कहाऊंगा।"
किसी ने सुनाया यह
वीर-जनमोहन, अति
दुर्जय संग्राम-राग,
फाग था खेला रण
बारहो महीनों मे।
शेरों की मॉद मे,
आया है आज स्यार—
जागो फिर एक बार !

सत् श्री अकाल,
भाल-अनल धक-धक कर जला,
भस्म हो गया था काल,
तीनों गुण ताप त्रय,
अभय हो गये थे तुम,
मृत्युञ्जय व्योमकेश के समान,
अमृत-सन्तान ! तीव्र
भेदकर सप्तावरण—मरण-लोक,
शोकहारी ! पहुँचे थे वहाँ,
जहाँ आसन है सहस्रार—
जागो फिर एक वार !
सिंह की गोद से छीनता है शिशु कौन ?
मौन भी क्या रहती वह रहते प्राण !
रे अजान,
एक मेषमाता ही
रहती है निर्निमेष—
दुर्बल वह—
छिनती सन्तान जब
जन्म पर अपने अभिशप्त
तप्त आँसू बहाती है।
किन्तु क्या ?
योग्य जन जीता है,
पश्चिम की उक्ति नहीं,
गीता है, गीता है,
स्मरण करो बार बार—
जागो फिर एक वार !

पशु नहीं, वीर तुम;
समर-शूर, क्रूर नहीं;
कालचक्र मे हो दबे,
आज तुम राजकुँवर,
समर सरताज !
मुक्त हो सदा ही तुम,
बाधा-विहीन-बंध छन्द ज्यों
डूबे आनन्द मे सच्चिदानन्द-रूप।
महा-मन्त्र ऋषियों का
अणुओं परमाणुओं मे फूँका हुआ,
"तुम हो महान्
तुम सदा हो महान्,
है नश्वर यह दीनभाव,
कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पदरज भर भी है नहीं
पूरा यह विश्वभार—"
जागो फिर एक बार !

सन्ध्या-सुन्दरी

दिवसावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे।
तिमिराञ्चल मे चञ्चलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर-मधुर है दोनों उसके अधर,—

किन्तु जरा गम्भीर,—नही है उनमें हास-विलास।
हँसता है तो केवल तारा एक
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले-काले बालों से,
हृदयराज की रानी का वह करता है अभिषेक।
अलसता की-सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली
सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह,
छाँह-सी अम्बर-पथ से चली।
नही बजती उसके हाथों मे कोई वीणा,
नही होता कोई अनुराग-राग-आलाप,
नूपुरो में भी रुनझुन-रुनझुन नही,
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा "चुप, चुप, चुप",
है गूँज रहा सब कही—

व्योम-मण्डल मे—जगतीतल में—
सोती शान्त सरोवर पर उस अमल-कमलिनी-दल में—
सौन्दर्य-गर्विता सरिता के अतिविस्तृत वक्षःस्थल मे—
धीर वीर गम्भीर शिखर पर हिमगिरि-अटल-अचल में—
उत्ताल-तरंगाघात-प्रलय-घन गर्जन-जलधि प्रबल में—
क्षिति मे—जल मे—नभ में—अनिल-अनल में—
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा "चुप, चुप, चुप"
है गूँज रहा सब कही,—
और क्या है? कुछ नही।
मदिरा की वह नदी बहाती आती,
थके हुए जीवों को वह सस्नेह
प्याला एक पिलाती;

झुलाती उन्हें अंक पर अपने,
दिखलाती फिर विस्मृति के वह अगणित मीठे सपने;
अर्धरात्रि की निश्चलता में हो जाती जब लीन,
कवि का बढ़ जाता अनुराग,
विरहाकुल कमनीय कंठ से
आप निकल पड़ता तब एक विहाग।

तरङ्गों के प्रति

किस अनन्त का नीला अञ्चल हिला-हिलाकर
आती हो तुम सजी मण्डलाकार?
एक रागिनी में अपना स्वर मिला-मिलाकर
गाती हो ये कैसे गीत उदार?
सोह रहा है हरा क्षीण कटि में, अम्बर शैवाल,
गाती आप, आप देती सुकुमार करों से ताल।

चञ्चल चरण बढ़ाती हो,
किससे मिलने जाती हो?

तैर तिमिर-तल भुज-मृणाल से सलिल काटती,
आपस में ही करती हो परिहास,
हो मरोरती गला शिला का कभी डाँटती,
कभी दिखाती जगतीतल को त्रास,
गन्ध-मन्द-गति कभी पवन का मौन-भंग उच्छ्वास,
छाया-शीतल तट-तल में आ तकती कभी उदास,
क्यों तुम भाव बदलती हो—
हँसती हो, कर मलती हो?

वाँहें अगणित वढ़ी जा रही हृदय खोलकर,
किसके आलिंगन का है यह साज ?
भाषा में तुम पिरो रही हो शब्द तोलकर,
किसका यह अभिनन्दन होगा आज ?
किसके स्वर में आज मिला दोगी वर्षों का गान,
आज तुम्हारा किस विशाल वक्षस्थल में अवसान ?
आज जहाँ छिप जाओगी,
फिर न हाय तुम गाओगी !
वहती जाती साथ तुम्हारे स्मृतियाँ कितनी,
दग्ध चिता के कितने हाहाकार !
नश्वरता की—थी सजीव जो—कृतियाँ कितनी,
अवलाओं की कितनी करुण पुकार !
मिलन-मुखर तट की रागिनियो का निर्भय गुन्जार,
शंकाकुल कोमल मुख पर व्याकुलता का सन्चार !
उस असीम मे ले जाओ,
मुझे न कुछ तुम दे जाओ !

मास्को डायेलाग्स

मेरे नये मित्र है श्रीयुत गिडवानी जी,
वहुत - वड़े सोश्यलिस्ट, समाजवादी
"मास्को डायेलाग्स" लेकर आये है मिलने।
मुस्कराकर कहा, "यह मास्को डायेलाग्स है,
सुभाष वावू ने इसे जेल मे मँगाया था,
भेट किया था मुझको जव थे पहाड़ पर।
'३५ तक, मुश्किल से पिछड़े इस मुल्क मे

दो प्रतियाँ आई थीं।"
फिर कहा, 'वक्त नहीं मिलता है,
बड़े भाई साहब का बंगला बन रहा है,
देखभाल करता हूँ।"
फिर कहा, "मेरे समाज मे बड़े-बड़े आदमी हैं,
एक - से हैं एक मूर्ख;
उनको फँसाना है,
ऐसे कोई साला एक धेला नहीं देने का।
उपन्यास लिखा है,
जरा देख दीजिए।
अगर कहीं छप जाय
तो प्रभाव पड़ जाय उल्लू के पट्ठों पर;
मनमाना रुपया फिर ले लूँ इन लोगों से;
नये किसी बँगले में एक प्रेस खोल दूँ;
आप भी वहीं चलें,
चैन की बंसी बजे।"
देखा उपन्यास मैंने,
श्रीगणेश मे मिला—
"पृय असनेहमयी स्यामा मुझे प्रेम है।"
इसको फिर रख दिया, देखा "मास्को डायेलाग्स",
देखा गिडवानी को।

सुमित्रानन्दन पन्त

पंतजी का जन्म संवत् १९५६ में हुआ। प्रयाग विश्वविद्यालय में पढ़ते समय ही आपने एक राजनैतिक सभा में महात्मा गांधी की युगवाणी सुनकर विश्वविद्यालय छोड़ दिया। आप हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला और संस्कृत के विद्वान् हैं। स्वभाव से आप अत्यन्त अध्ययनप्रिय और मननशील है। आपके स्फुट लेख और कविता-संग्रहों की भूमिकायें, गद्य-पद्य और छायावाद एक पुनर्मूल्यांकन शीर्षक ग्रन्थ आपके गहरे चिन्तन के प्रमाण हैं। हिन्दी के प्रमुख विचारकों में आपका अपना स्थान है।

पन्तजी हिन्दी के युगान्तरकारी कवि हैं। आपने हिन्दी कविता को नये भाव, नयी भाषा और नये सौन्दर्य-चित्र प्रदान किये है। कोमलता और भावार्द्रता आपकी कविता के प्रमुख गुण हैं। माधुर्य आपकी कविता का प्राण है। कल्पना से ऊँची से ऊँची उड़ान भर कर भी कवि के पैर इसी पृथ्वी पर रहते हैं इसलिये उसकी कविता में मानवीय संवेदना और सहानुभूति मिलती है। आपका व्यक्तित्व हिन्दी कवियों के लिये बड़ा प्रेरक रहा है।

'पल्लव' पंतजी का पहिला कविता-संग्रह है जिसने हिन्दी कविता को नयी धारा की ओर मोड़ दिया। पल्लव की कविताओं में कल्पना की प्रधानता है। हिन्दी कविता में जिस स्वच्छन्दतावाद का प्रवर्तन श्रीधर पाठक ने किया उसका विकसित रूप पल्लव की कविताओं में देखने को मिला। वीणा की कविताओं में सहज मानवीय जिज्ञासा और मन की कोमल वृत्तियों का चित्रण है। 'गुंजन' की कविताओं में कवि का अधिक व्यापक और मानवीय रूप मिलता है। मानव के यथार्थ सुखमय जीवन को कवि ने संगीत के स्वरों में गुनगुना दिया है। चिन्तन का यह स्वरूप युगान्त की कविताओं में और स्पष्ट होता है। अपनी प्रगतिशील कविताओं में कवि हिन्दी साहित्य में प्रवेश करती हुई

प्रगति की शक्तियों का नेतृत्व करता है। युगवाणी और ग्राम्या कवि की ऐसी ही कविताओं के संकलन हैं। यहाँ भी कविता में युग-परिवर्तन का श्रेय कवि पंत को मिलता है। उच्छ्वास और ग्रन्थि कवि की प्रारम्भिक कृतियाँ हैं। कवि की स्वातंत्रोत्तर युग में लिखी गई कृतियों के नाम है स्वर्ण-किरण, स्वर्ण-धूलि, युगपथ, उत्तरा, अतिमा, वाणी, कला और बूढ़ा चाँद, पतझर और लोकायतन।

बादल

सुरपति के हमही हैं अनुचर,
जगत्प्राण के भी सहचर,
मेघदूत की सजल कल्पना,
चातक के चिर-जीवनधर;
मुग्ध शिखी के नृत्य मनोहर,
सुभग स्वाति के मुक्ताकर,
विहग-वर्ग के गर्भ-विधायक,
कृषक-बालिका के जलधर।
जलाशयों में कमल-दलों सा,
हमें खिलाता नित दिनकर,
पर बालक-सा वायु सकल-दल,
बिखरा देता, चुन सत्वर;
लघु-लहरों के चल-पलनों में,
हमें झुलाता जब सागर,
वही चील-सा झपट बाँह गह,
हमको ले जाता ऊपर।
भूमि-गर्भ में छिप विहंग-से,
फैला कोमल, रोमिल-पंख,

हम असंख्य अस्फुट-बीजों में,
लेते साँस, छुडा जड़-पंक,
विपुल-कल्पना-से त्रिभुवन की,
विविध-रूप धर भर नभ-अंक:
हम फिर क्रीडा-कौतुक करते,
छा अनन्त-उर में निःशंक।
कभी चौकडी भरते मृग-से
भू पर चरण नही धरते;
मत्त-मतंगज कभी झूमते;
सजग-शशक नभ को करते;
कभी कीश-से अनिल-डाल मे
नीरवता से मुँह भरते;
वृहत्-गृद्ध-से विहग-छदों को
बिखराते नभ में तरते;
कभी अचानक, भूतो का-सा
प्रगटा विकट महा-आकार;
कड़क, कड़क, जब हँसते हम सब,
थर्रा उठता है संसार;
फिर परियों के बच्चो-से हम
सुभग सीप के पंख पसार;
समुद पैरते शुचि-ज्योत्स्ना मे
पकड़ इन्दु के कर-सुकुमार।
अनिल-विलोड़ित गगन-सिन्धु मे
प्रलय-बाढ़-से चारों ओर
उमड़ उमड़ हम लहराते है
बरसा उपल, तिमिर, घनघोर;

बात बात में, तूल तोम सा
        व्योम-विटप से झटक झकोर।
हमें उड़ा ले जाता जब द्रुत
        दल-बल-युत घुस वातुल-चोर।
वुद् वुद्-द्युति तारक-दल-तरलित
        तम के यमुना-जल में श्याम।
हम विशाल जम्वाल-जाल-से
        बहते हैं अमूल, अविराम
दमयन्ती-सी कुमुद-कला के
        रजत-करों मे फिर अभिराम
स्वर्ण-हंस-से हम मृदु-ध्वनि कर,
        कहते प्रिय सन्देश ललाम।
दुहरा विद्युद्दान चढ़ा द्रुत,
        इन्द्र-धनुष की कर टंकार!
विकट पटह से निर्घोषित हो,
        बरसा विशिखों-सा आसार;
चूर्ण चूर्ण कर वज्रायुध से
        भूधर को, अति भीमाकार
मदोन्मत्त वासव-सेना - से
        करते हम नित वायु-विहार।
स्वर्ण-भृंग-तारावलि वेष्टित,
        गुञ्जित, पुञ्जित, तरल, रसाल,
मधु गृह से हम गगन-पटल मे
        लटके रहते विपुल-विशाल;
जालिक-सा आ अनिल, हमारा
        नील-सलिल में फैला जाल,

उन्हें फाँस लेता फिर सहसा
मीनों के-से चञ्चल बाल।
व्योम-विपिन में जब बसन्त सा
खिलता नव-पल्लवित प्रभात,
बहते हम तब अनिल स्रोत में
गिर तमाल-तम के-से पात;
उदयाचल से बाल-हंस फिर
उड़ता अम्बर मे अवदात
फैल स्वर्ण-पंखों से हम भी
करते द्रुत मारुत से बात।
सन्ध्या का मादक-पराग पी
झूम मलिन्दों-से अभिराम
नभ के नील-कमल मे निर्भय
करते हम विमुग्ध विश्राम!
फिर वाड़व-से सान्ध्य-सिन्धु में
सुलग, सोख उसको अविराम,
बिखरा देते तारावलि-से
नभ मे उसके रत्न निकाम।
धीरे धीरे संशय-से उठ,
बढ़ अपयश-से शीघ्र अछोर,
नभ के उर मे उमड़ मोह-से
फैल लालसा-से निशि-भोर;
इन्द्रचाप-सी व्योम-भृकुटि पर
लटक मौन-चिन्ता-से घोर,
घोस भरे विप्लव-भय से हम
छा जाते द्रुत चारो ओर।

पर्वत से लघु-धूलि, धूलि से
पर्वत बन, पल में, साकार
काल-चक्र से चढ़ते, गिरते,
पल मे जलधर, फिर जलधार;
कभी हवा मे महल बनाकर,
सेतु बाँध कर कभी अपार,
हम विलीन हो जाते सहसा
विभव-भूति ही-से निस्सार।
नग्न गगन की शाखाओं में
फैला मकड़ी का-सा जाल!
अम्बर के उड़ते पतंग को
उलझा लेते हम तत्काल।
फिर अनन्त-उर की करुणा-से
त्वरित द्रवित हो कर उत्ताल
आतप में मूर्छित कलियों को
जाग्रत करके हिम-जल डाल।
हम सागर के धवल हास हैं,
जल के धूम, गगन की धूल;
अनिल-फेन, ऊषा के पल्लव,
वारि-वसन, वसुधा के मूल;
नभ में अवनि, अवनि में अम्बर,
सलिल-भस्म, मारुत के फूल,
हम ही जल में थल, थल में जल,
दिन के तम पावक के तूल,
व्योम-वेलि, ताराओं की गति,
चलते-अचल, गगन के गान;

हम अपलक-तारों की निद्रा,
ज्योत्स्ना के हिम, शशि के यान;
पवन-धेनु, रवि के पांशुल-श्रम,
सलिल-अनल के विरल-वितान,
व्योम-पलक, जल-खग, बहते थल,
अम्बुधि की कल्पना महान।
धूम-धुँआरे, काजर-कारे,
हम ही बिकरारे बादर,
मदन राज के वीर बहादुर,
पावस के उड़ते फणिधर।
चमक झमकमय मंत्र वशीकर,
छहर-घहर मय विष - सीकर
स्वर्ग-सेतु - से—इन्द्र - धनुष - धर
काम रूप घनश्याम अमर!

भारत माता

भारत माता
ग्रामवासिनी।
खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला सा आँचल,
गंगा यमुना में आँसू जल,
मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी।
दैन्य जड़ित अपलकनत चितवन
अधरों में चिर नीरव रोदन,

मानव ! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति ?
आत्मा का अपमान प्रेत और छाया से रति !
प्रेम अर्चना यही, करें हम मरण को वरण ?
स्थापित कर कंकाल भरे जीवन का प्रांगण !
शव को दें हम रूप रंग, आदर मानव का ?
मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का ?
गत युग के बहु धर्म-रूढ़ि के ताज मनोहर,
मानव के मोहान्ध हृदय में किये हुए घर।
भूल गये हम जीवन का संदेश अनश्वर
मृतकों के है मृतक, जीवितों का है ईश्वर !

श्रीमती महादेवी वर्मा

आपका जन्म संवत् १९६४ में हुआ। आपका सुसंस्कृत परिवार पीढ़ियों से हिन्दी साहित्य-चर्चा का केन्द्र रहा है।

महादेवी जी की गणना छायावाद के प्रवर्तक कवियों में होता है। प्रसाद-पन्त-निराला की बृहत्त्रयी में आपका नाम भी उसी गौरव के साथ बाद में जुड़ गया। लोकप्रियता की दृष्टि से आपकी कवितायें इन तीनों में किसी कवि से पीछे नहीं हैं। आपने कुछ दिनों तक 'चाँद' का संपादन करके अपनी जिस परिष्कृत गद्यशैली का प्रादुर्भाव किया वह उत्तरोत्तर प्रौढ़ होती गई। आज आप उच्चकोटि की गद्य-लेखिका भी मानी जाती हैं। अतीत के चल चित्र, शृंखला की कड़ियाँ और स्मृति की रेखाएँ आपकी समादृत गद्य कृतियाँ हैं।

महादेवी जी हिन्दी के रहस्यवादी कवियों में वर्तमान युग में ऊँचा स्थान रखती हैं। उनका रहस्यवाद प्रेमानुभूति को लेकर चलता है और उसमें विरह का विशेष चित्रण मिलता है। आपकी रहस्यवादी कविताओं में जो संगीतमयता है वह अनोखी है। उनके वाक्यांशों का घुमाव, उनकी शब्द योजना और चित्र बनाने की शक्ति ने उनकी कविताओं को विशेष लोक-प्रियता प्रदान की है। आधुनिक युग का प्रगीत काव्य महादेवी के काव्य से विशेष रूप से प्रभावित है।

आपकी कविता में दुःख और निराशा के चित्रण की प्रधानता है और व्यंजना में सारल्य और सरसता है।

शैली अधिकतर अलंकारप्रधान है। भाषा तत्समप्रधान और संस्कृत-निष्ठ है। उसमें उच्च कोटि का कलात्मक सौष्ठव मिलता है।

अतृप्ति

चिरतृप्ति कामनाओं का कर जाती निष्फल जीवन,
बुझते ही प्यास हमारी पल में विरक्ति जाती बन।
पूर्णता यही भरने की ढुल कर देता सूते घन,
सुख की चिर पूर्ति यही है उस मधु से फिर जावे मन।
चिर ध्येय यही जलने का ठण्डी विभूति बन जाना,
है पीड़ा की सीमा यह दुख का चिरसुख हो जाना।
मेरे छोटे जीवन मे देता न तृप्ति का कण भर,
रहने दो प्यासी आँखें भरती आँसू के सागर।
तुम मानस में बस जाओ छिप दुख की अवगुण्ठन से,
मैं तुम्हें ढूँढने के मिस परिचित हो लूँ कण-कण से।
तुम रहो सजग आँखों की सित-असित मुकुरता बनकर,
मैं सब कुछ तुममें देखूँ तुमको न देख पाऊँ पर!
चिरमिलन विरह पुलिनों की सरिता हो मेरा जीवन,
प्रतिपल होता रहता हो युग कूलों का आलिंगन!
इस अचल क्षितिज रेखा से तुम रहो निकट जीवन के,
पर तुम्हें पकड़ पाने के—सारे प्रयत्न हों फीके।
द्रुत पखों वाले मन को तुम अन्तहीन नभ होना,
युग उड़ जावे उड़ते ही परिचित हो न एक भी कोना,
तुम अमर प्रतीक्षा हो मै पग विरह पथिक का धीमा,
आते जाते मिट जाऊँ पाऊँ न पंथ की सीमा।
तुम हो प्रभात की चितवन मै विधुर निशा बन जाऊँ,
काटूँ वियोग-पल रोते सयोग समय छिप जाऊँ!
आवे बन मधुर मिलन-क्षण पीड़ा की मधुर कसक-सा।
हँस उठे विरह ओठों में प्राणों में एक पुलक-सा।

पाने में तुमको खोऊँ खोने में समझूँ पाना,
यह चिर अतृप्ति हो जीवन चिर तृष्णा हो मिट जाना।
गूँथें विषाद के मोती चाँदी-सी स्मित के डोरे,
हो मेरे लक्ष्य-क्षितिज की आलोक-तिमिर दो छोरें।

मधुर मधुर मेरे दीपक जल

मधुर मधुर मेरे दीपक जल!
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर!
सौरभ फैला विपुल धूप बन
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन!
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल गल!
पुलक पुलक मेरे दीपक जल।
सारे शीतल कोमल नूतन,
माँग रहे तुझसे ज्वाला-कण;
विश्वशलभ सिर धुन कहता 'मैं'
हाय न जल पाया तुझ में मिल!'
सिहर सिहर मेरे दीपक जल!
जलते नभ में देख असंख्यक,
स्नेहहीन नित कितने दीपक;
जलमय सागर का उर जलता;
विद्युत ले घिरता है बादल!
विहँस विहँस मेरे दीपक जल!
द्रुम के अंग हरित कोमलतम,

ज्वाला को करते हृदयंगम;
वसुधा के जड़ अन्तर में भी,
वन्दी है तापों की हलचल।

विखर विखर मेरे दीपक जल!
मेरी निश्वासों से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का भय कर;
मैं अञ्चल की ओट किये हूँ
अपनी मृदु पलकों से चंचल!

सहज सहज मेरे दीपक जल!
सीमा ही लघुता का बन्धन,
है अनादि तू मत घड़ियाँ गिन,
मैं दृग के अक्षय कोषों से—
तुझ में भरती हूँ आँसू-जल!

सजल सजल मेरे दीपक जल!
तम असीम तेरा प्रकाश चिर,
खेलेंगे नव खेल निरन्तर;
तम के अणु अणु में विद्युत सा—
अमिट चित्र अंकित करता चल!

सरल सरल मेरे दीपक जल!
तू जल जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलनामय;
मधुर मिलन में मिट जाना तू—
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल खिल!

मदिर मदिर मेरे दीपक जल!
प्रियतम का पथ आलोकित कर!

पंथ होने दो अपरिचित

पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला!
घेर ले छाया अमा वन,
आज कज्जल-अश्रुओं में रिमझिमा ले यह घिरा घन;
और होंगे नयन सूखे
तिल बुझे औ, पलक रूखे;
आर्द्र चितवन में यहाँ
शत विद्युतों में दीप खेला!

अन्य होंगे चरण हारे
और हैं जो लौटते, दे शूल को संकल्प सारे;
दुख व्रती निर्माण उन्मद,
यह अमरता नापते पद
बाँध देंगे अंक - संसृति
से तिमिर में स्वर्ण बेला!

दूसरी होगी कहानी,
शून्य में जिसके मिटे स्वर, धूलि मे खोई निशानी;
आज जिस पर प्रलय विस्मित—
मैं लगाती चल रही नित,
मोतियो का हाट औ'
चिनगारियों का एक मेला!

हास का मधु-दूत भेजो,
रोष की भ्रू-भंगिमा पतझार को चाहे सहेजो!
ले मिलेगा उर अचंचल,
वेदना-जल, स्वप्न-शतदल;

जान लो वह मिलन एकाकी
विरह में है दुकेला!
पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला!

पूछता क्यों शेष कितनी रात?

पूछता क्यों शेष कितनी रात?
अमर सम्पुट में ढला तू
छू नखों की कांति चिर संकेत पर जिनके जला तू,
स्निग्ध सुधि जिनकी लिये कज्जल-दिशा में हँस चला तू,
परिधि बन घेरे तुझे, वे उँगलियाँ अवदात!
झर गये खद्योत सारे,
तिमिर-वात्याचक्र में सब पिस गये अनमोल तारे;
बुझ गई पवि के हृदय में काँपकर विद्युत-शिखा रे!
साथ तेरा चाहती एकाकिनी बरसात!
व्यंगमय है क्षितिज-घेरा
प्रश्नमय हर क्षण निठुर-सा पूछता परिचय बसेरा;
आज उत्तर हो सभी का ज्वालवाही श्वास तेरा!
छीजता है इधर तू, उस ओर बढ़ता प्रात!
प्रणत लौ की आरती ले
धूम-लेखा स्वर्ण-अक्षत नील-कुमकुम वारती ले
मूक प्राणों में व्यथा की स्नेह-उज्ज्वल भारती ले
मिल, अरे बढ़ रहे यदि प्रलय झंझावात!
कौन भय की बात!
पूछता क्यों शेष कितनी रात?

बालकृष्ण राव

आपका जन्म संवत् १९७० विक्रमी में हुआ। अहिन्दी भाषी होते हुए भी आपने विद्यार्थी जीवन में ही हिन्दी में कविताएँ लिखना आरम्भ कर दिया था और प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर आपने आई० सी० एस० की परीक्षा में सफलता प्राप्त कर उत्तर प्रदेश सरकार और भारत सरकार के अन्तर्गत अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य किया। आज से लगभग १५ वर्ष पूर्व उससे त्यागपत्र देकर आपने स्वतंत्र साहित्यिक एवं सार्वजनिक जीवन अपनाया तथा अनेक महत्त्वपूर्ण पदों को सुशोभित किया। आप इस समय गोरखपुर विश्वविद्यालय के कुलपति है।

बालकृष्ण राव की आरंभिक कविताओं में छायावादी भावुकता और उच्छसित हृदयावेग मिलता है परन्तु चिन्तनशीलता के बीज भी परिलक्षित होते है। धीरे-धीरे चिंतन की प्रवृत्ति प्रौढ़तर धरातलों पर आ गई और उनकी कविताओं में चेतना के नये-नये आयाम मिलने लगे। अपनी भाव प्रवणता, परिष्कृत रुचिगत प्रेरणा और शिल्प-बोध के लिए इनकी कविताएँ प्रसिद्ध हैं जो नित्य नये भावानुभवों के प्रति ग्रहणशील रहता है। आपके ६ काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आपने वर्षो तक साहित्य-सम्मेलन द्वारा प्रकाशित माध्यम का संपादन भी किया है।

दीपक मन्द न हो

दीपक मन्द न हो
मार्ग का दीपक मन्द न हो।
खोल द्वार यदि देवालय ही स्वयं निमन्त्रित करता,
हर्षित होता, किन्तु उपासक सोच सोच कर डरता।

कल, फिर बन्द न हो—
द्वार यह कल फिर बन्द न हो।
छिपे न शशि, अलसाई आँखें झिप न जायं तारों की,
बने निशा ही स्वयं कल्पना दिन के शृंगारों की।
जब अभिनन्दन हो—
सूर्य का जब अभिनन्दन हो।
लक्ष्य दूरतर हुआ, कठिनतर हुई विषम वन-वीथी,
भ्रान्त पथिक ने किन्तु एक बस यही प्रार्थना की थी—
दीपक मन्द न हो,
मार्ग का दीपक मन्द न हो।

अधूरी बात

बात पूरी हो न पायी थी, अभी कुछ
और कहना था मुझे, जब रात बीती।
दिवस की पहली किरण के स्पर्श से ही
हो गये शशि तारिका के साथ मेरे
शब्द भी निष्प्राण, सहमकर स्वर न जाने
छिप गया किस विहग-वाणी में अचानक।
मैं न समझा क्या हुआ था, क्यों अधूरी
रह गई वह बात जिसको सुन रहे थे
तुम सहज सुन्दर कुतूहल से समुत्सुक।
अब प्रतीक्षा कर रहा हूँ रात की फिर,
शब्द फिर से मिल सकें, पूरी करूँ मैं
बात अपनी। किन्तु भय है अब न होगा
फिर उसे सम्भव सुनाना या समझना
शब्द होंगे, पर वही क्या अर्थ होगा?

जग उठा हूँ, पर न अब तक नींद टूटी

जग उठा हूँ, पर न अब तक नींद टूटी;
दृष्टि है जिस ओर पड़ती देखता हूँ
द्रवित कल के सत्य की होती शिलायें,
तरल, चञ्चल स्वप्न पुंजीभूत होते।
नींद होगी शेष आँखों में, नहीं तो
इस व्यवस्था को विपर्यय क्यों समझता?
राह दिखलाने बढ़ी थी कल्पना, पर
साथ चलने का उपक्रम उस क्रिया को
मान, साहस कर अकेला चल पड़ा मैं
यह न जाने भूल थी या वंचना थी।
देखता हूँ अब वही आलोक आगे
मार्ग के उस छोर को करता प्रकाशित,
इस दिशा से ही कभी जो कर बढ़ाये
स्वयं पथ की ओर इंगित कर रहा था।

कौन जाने

झुक रही है भूमि बांई ओर, फिर भी
कौन जाने,
नियति की आँखें बचाकर,
आज धारा दाहिने बह जाय।
जाने
किस किरण-शर के वरद आघात से
निर्वर्ण रेखाचित्र बीती रात का
कब रंग उठे, कब मुखर हो

यह मूक क्या कह जाय।

"संभव क्या नहीं है आज।"
लोहित लेखनी प्राची क्षितिज को
कर रही है प्ररणा या प्रश्न अंकित
कौन जाने——
कौन जाने
आज ही निःशेष हों सारे संजोये स्वप्न
दिन की सिद्धियों में—
कौन जाने शेप फिर भी
एक नूतन स्वप्न की संभावना रह जाय।

रामधारी सिंह 'दिनकर'

आपका जन्म सन् १९०८ में हुआ। पटना विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर आपने अनेक वर्षों तक बिहार में सब-रजिस्ट्रार के पद पर काम किया। इसके उपरान्त बिहार के सूचना और प्रकाशन विभाग में उपसंचालक रहे और बाद में हिन्दी के प्राध्यापक, भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति और भारत सरकार के गृह-मंत्रालय में हिन्दी सलाहकार के पद पर कार्यरत रहे। बीच में आप लगभग दस वर्ष तक संसद सदस्य भी रहे।

दिनकर की गणना हिन्दी के लोकप्रिय कवियों में होती है। आपकी भाषा-शैली, विषय और भाव-व्यंजना सभी अपनी है। आपके सशक्त व्यक्तित्व की छाप आपकी अधिकांश कविताओं पर अंकित है। दिनकर की कविता ओज और आवेग प्रधान है। वीर रस के रससिद्ध कवि के साथ-साथ वे हृदय की कोमल वृत्तियों के मार्मिक चित्रण में भी कुशल हैं। रेणुका कवि का पहला काव्य-संग्रह है जिसके प्रकाशित होते ही कवि की ख्याति हिन्दी जगत में छा गई। हुंकार नामक अपने दूसरे कविता-संग्रह में कवि क्रान्ति का झंडा लेकर सामने आया और रसवन्ती में उनकी मर्म-मधुर कविताओं का संकलन है जो कल्पना की प्रधानता और रसवृत्ति की प्यास लेकर चलती है। इसी प्रकार द्वन्द्व गीत में कवि की स्वतंत्र रूबाइयाँ हैं जो जगत और जीवन के प्रति चिन्तनशील दृष्टिकोण उपस्थित करती हैं। कवि की प्रौढ़तम कृतियों में कुरुक्षेत्र और रश्मिरथी की गणना होती है। कवि के साथ-साथ वे राजनीति, इतिहास और दर्शन में भी विशिष्ट गति रखते हैं और उनकी नवीन समन्वित जीवन-दृष्टि का आभास उनके प्रबन्ध काव्यों में मिलता है। जिनमें जीवन के चिन्तन, मौलिक प्रश्नों को कवि अपने स्वतंत्र दृष्टिकोण से समझने और समझाने का काव्योचित प्रयास करता है। छायावाद की स्पष्ट और अतिशय काल्पनिक, सर्वथा अशरीरी अभि-

व्यक्ति के स्थान पर दिनकर ने भी कविता को यथार्थता की जीवन भूमि प्रदान की है। उनकी भाषा में वेग है और इतिहास की वेदना के साथ उसके दर्प को,जगाने में भी उन्हें सफलता मिली है। भारतीय ग्रामीण जनता के शोषण और उसके शोषकों द्वारा होने वाले अत्याचारों के सजीव चित्र दिनकर की कविता में मिलते हैं। जिन कवियों की कविता में प्रगतिशीलता की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति है उनमें दिनकर की भी गणना की जाती है। साथ ही वे उच्चकोटि के गद्यलेखक और आलोचक भी है।

गीत-अगीत

गीत अगीत कौन सुन्दर है?
गाकर गीत विरह के तटिनी
बेगवती वहती जाती है
दिल हल्का कर लेने को
उपलों से कुछ कहती जाती है
तट पर एक गुलाब सोचता
'देते स्वर यदि मुझे विधाता
अपने पतझड़ के सपनों का
मैं भी जग को गीत सुनाता'
गा - गाकर वह रही निर्झरी
पाटल मूक खड़ा तट पर है
गीत अगीत कौन सुन्दर है?
बैठा शुक उस घनी डाल पर
जो खोंते पर छाया देती
पंख फुला नीचे खोंते में
शुकी बैठ अंडे है सेती

गाता शुक जब किरण वसन्ती
छूती अंग पर्ण से छनकर
किन्तु शुकी के गीत उमड़कर
रह जाते सनेह में सनकर
गूँज रहा शुक का स्वर वन में
फूला मग्न शुकी का पर है
गीत अगीत कौन सुन्दर है?
दो प्रेमी हैं यहाँ, एक जब
बड़े साँझ आल्हा गाता है
पहला स्वर उसकी राधा को
घर से यहाँ खींच लाता है

चोरी-चोरी खड़ी नीम की
छाया में छिपकर सुनती है
'हुई न क्यों मैं कड़ी गीत की
विधना', यों मन में गुनती है
वह गाता, पर किसी वेग से
फूल रहा इसका अन्तर है
गीत अगीत कौन सुन्दर है?

भारत का यह रेशमी नगर

हो गया एक नेता मैं भी? तो बंधु, सुनो,
मैं भारत के रेशमी नगर में रहता हूँ।
जनता तो चट्टानों का बोझ सहा करती,
मैं चाँदनियों का बोझ किसी विध सहता हूँ।
दिल्ली फूलों में बसी, ओस-कण से भीगी,
दिल्ली सुहाग है, सुषमा है, रंगीनी है।

प्रेमिका कंठ में पड़ी मालती की माला,
दिल्ली सपनों की सेज मधुर रस-भीनी है।
बस, जिधर उठाओ दृष्टि रेशम केवल,
रेशम पर से क्षण भर को आँख न हटती है।
सच कहा एक भाई ने, दिल्ली मे तन से,
रेशम से रुखड़ी चीज न कोई सटती है।
आखिर हो भी क्यों नही ? कि दिल्ली के भीतर
जाने युग से कितनी सिद्धियाँ समायी है।
औ सबका पहुँचा काल तभी से जब उनकी,
आँखें रेशम पर बहुत अधिक ललचायीं है।
रेशम के कोमल तार, क्रान्तियो के धागे,
है बँधे उन्ही से अंग यहाँ आजादी के।
दिल्ली वाले गा रहे बैठ निश्चेत मगन,
रेशमी महल मे गीत खुरदुरी खादी के।
चेतन भोगिनी, विलासमयी यह देवपुरी,
ऊँघती कल्पनाओ से जिसका नाता है।
जिसको इतनी चिंता का भी अवकाश नही,
खाते है जो वह अन्न कौन उपजाता है।
उद्यानों का यह नगर, कही भी जा देखो,
इसमें कुम्हार का चाक न कोई चलता है।
मजदूर मिले, पर, मिलता कही किसान नही,
फूलते फूल, पर, मक्का कही न फलता है।
क्या ताना है मोहक वितान मायापुर का,
बस, फूल-फूल, रेशम रेशम फैलाया है।
लगता है, कोई स्वर्ग खमंडल से उड़कर,
मदिरा में माता हुआ भूमि पर आया है।

गंदगी, गरीबी, मैलेपन को दूर रखो,
शुद्धोधन के पहरे वाले चिल्लाते है;
है कपिलवस्तु पर फूलों का श्रृंगार पड़ा,
रथ—समारूढ़ सिद्धार्थ घूमने जाते है।
सिद्धार्थ देख रम्यता रोज ही फिर आते,
मन में कुत्सा का भाव नही पर, जगता है;
समझाये उनको कौन, नही भारत वैसा
दिल्ली के दर्पण में जैसा वह लगता है?
भारत धूलों से भरा, आँसुओं से गीला,
भारत अब भी व्याकुल विपत्ति के घेरे में।
दिल्ली में तो है खूब ज्योति की चहल-पहल,
पर, भटक रहा है सारा देश अँधेरे मे।
रेशमी कलम से भाग्य - लेख लिखने वालो,
तुम भी अभाव से कभी ग्रस्त हो रोये हो?
बीमार किसी बच्चे की दवा जुटाने में,
तुम भी क्या घर भर पेट बाँधकर सोये हो?
असहाय किसानों की किस्मत को खेतो में,
क्या अनायास जल में बह जाते देखा है?
क्या खायेंगे? यह सोच निराशा से पागल,
बेचारों को चीख रह जाते देखा है?
देखा है ग्रामो की अनेक रम्भाओं को,
जिनकी आभा पर धूल अभी तक छायी है?
रेशमी देह पर जिन अभागिनों की अब तक,
रेशम क्या? साड़ी सही नही चढ़ पायी है।
पर, तुम नगरों के लाल, अमीरी के पुतले,
क्यों व्यथा भाग्य-हीनो की मन में लाओगे?

शीश पर आदेश कर अवधार्य,
प्रकृति के सब तत्त्व करते हैं मनुज के कार्य
मानते हैं हुक्म मानव का महा वरुणेश,
और करता शब्दगुण अम्बर वहन सन्देश।
नव्य नर की मुष्टि मे विकराल,
हैं सिमटते जा रहे प्रत्येक क्षण दिक्काल।
यह प्रगति निस्सीम! नर का यह अपूर्व विकास!
चरण-तल भूगोल! मुट्ठी में निखिल आकाश।
किन्तु है, बढता गया मस्तिष्क ही निःशेष,
छूट कर पीछे गया है रह हृदय का देश;
नर मनाता नित्य नूतन बुद्धि का त्योहार,
प्राण में करते दुखी हो देवता चीत्कार।
चाहिए उनको न केवल ज्ञान,
देवता हैं माँगते कुछ स्नेह, कुछ बलिदान;
मोम सी कोई मुलायम चीज
ताप पाकर जो उठे मन में पसीज-पसीज;
प्राण के झुलसे विपिन मे फूल कुछ सुकुमार;
ज्ञान के मरु में सुकोमल भावना की धार;
चाँदनी की रागिनी कुछ भोर की मुसकान;
नींद में भूली हुई बहती नदी का गान;
रग में घुलता हुआ खिलती-कली का राज;
पत्तियों पर गूँजती कुछ ओस की आवाज;
आँसुओं में दर्द की गलती हुई तस्वीर,
फूल की, रस में बसी -भीगी हुई, जर्जार।
धूम, कोलाहल, थकावट, धूल के उस पार,
शीत जल से पूर्ण कोई मन्द गामी धार;

वृक्ष के नीचे जहाँ मन को मिले विश्राम,
आदमी काटे जहाँ कुछ छुट्टियाँ, कुछ शाम,
कर्म संकुल लोक-जीवन से समय कुछ छीन,
हो जहाँ पर बैठ नर कुछ पल स्वयं में लीन—
फूल सा एकान्त में उर खोलने के हेतु,
शाम को दिन की कमाई तोलने के हेतु।
ले चुकी सुख भाग समुचित से अधिक है देह,
देवता हैं माँगते मन के लिए लघु गेह।
हाय रे मानव, नियति का दास!
हाय रे मनुपुत्र, अपना आप ही उपहास!
प्रकृति की प्रच्छन्नता को जीत,
सिन्धु से आकाश तक सबको किये भयभीत;
सृष्टि को निज बुद्धि से करता हुआ परिमेय,
चीरता परमाणु की सत्ता असीम, अजेय,
बुद्धि के पवमान में उड़ता हुआ असहाय,
जा रहा तू किस दिशा की ओर को निरुपाय?
लक्ष्य क्या? उद्देश्य क्या? क्या अर्थ?
यह नहीं यदि ज्ञात तो विज्ञान का श्रम व्यर्थ।
सुन रहा आकाश चढ़ ग्रह-तारकों का नाद;
एक छोटी बात ही पड़ती न तुझको याद।
एक छोटी, एक सीधी बात,
विश्व में छाई हुई है वासना की रात।
वासना की यामिनी, जिसके तिमिर से हार,
हो रहा नर भ्रान्त अपना आप ही आहार;
बुद्धि में नभ की सुरभि, तन में रुधिर की कीच,
यह वचन से देवता, पर कर्म से पशु नीच।

शक्ति जाती रही है जिसने उन्हें अपने युग के कवियों में श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया था।

इसमें सन्देह नहीं कि जिन कवियों ने छायावाद की स्वप्नशीलता, अयथार्थता और अत्यधिक कल्पनाप्रियता के विरुद्ध विद्रोह करके अपने आप में विलीन होती जानेवाली हिन्दी कविता को जीवन के प्रशस्त राजमार्ग की ओर मोड़ा है उनमें बच्चन की गणना होती है। छायावाद के विरुद्ध विद्रोह कर एक स्वतंत्र काव्य-दर्शन को उन्होंने जन्म दिया है और कविता को हृदय के जीवित यथार्थ पर आधारित कर बहुजन सुलभ बनाया है। भाषा के क्षेत्र में भी उनकी देन कुछ इसी प्रकार की है। इस दृष्टि से छायावादोत्तर कवियों में उनका वही स्थान है जो द्विवेदी कालीन कवियों में मैथिलीशरण गुप्त का है।

विकल विश्व, सतरंगणी, हलाहल, मिलनयामनी, प्रणय-पत्रिका, बुद्ध और नाचघर, आरती और अंगारे, जनगीता, त्रिभंगिमा आदि बच्चन की अन्य काव्य-कृतियाँ हैं।

अँधेरे का दीपक

है अँधेरी रात, पर
दीवा जलाना कब मना है?

(१)

कल्पना के हाथ से कम-
नीय जो मन्दिर बना था,
भावना के हाथ ने जिसमे
वितानों को तना था,
स्वप्न ने अपने करों से
था जिसे रुचि से सँवारा,

स्वर्ग के दुष्प्राप्य रगों
से, रसों से जो सना था,
ढह नया वह तो जुटाकर
ईंट, पत्थर, कंकड़ो को,
एक अपनी शांति की
कुटिया बनाना कब मना है?
है अँधेरी रात, पर
दीवा जलाना कब मना है?

(२)

क्या घड़ी थी एक भी
चिंता नहीं थी पास आई,
कालिमा तो दूर, छाया
भी पलक पर थी न छाई,
आँख से मस्ती झपकती,
बात से मस्ती टपकती,
थी हँसी ऐसी जिसे सुन
बादलों ने शर्म खाई,
वह गई तो ले गई
उल्लास के आधार, माना,
पर अथिरता पर समय की
मुसकराना कब मना है?
है अँधेरी रात, पर
दीवा जलाना कब मना है?

(३)

हाय, [illegible] के झोंके
कि [illegible] जागा,

वैभवों से फेर आँखें
गान का वरदान माँगा,
एक अन्तर से ध्वनित हों
दूसरे में जो निरंतर,
भर दिया अंबर-अवनि को
मत्तता के गीत गा-गा,
अन्त उनका हो गया तो
मन बहलने के लिए ही,
ले अधूरी पंक्ति कोई
गुनगुनाना कब मना है?
है अँधेरी रात, पर
दीवा जलाना कब मना है?

(४)

हाय, वे साथी कि चुम्बक-
लौह-से जो पास आए,
पास क्या आए, हृदय के
बीच ही गोया समाए,
दिन कटे ऐसे कि कोई
तार वीणा के मिलाकर
एक मीठा और प्यारा
जिन्दगी का गीत गाए,
वे गए तो सोचकर यह
लौटने वाले नहीं वे,
खोज मन का मीत कोई
लौ लगाना कब मना है?

है अँधरी रात, पर
दीवा जलाना कब मना है?

(५)

क्या हवाएँ थी कि उजड़ा
प्यार का यह आशियाना,
कुछ न आया काम तेरा
शोर करना गुल मचाना,
नाश की उन शक्तियों के
साथ चलता जोर किसका,
किन्तु ऐ निर्माण के
प्रतिनिधि, तुझे होगा वताना,
जो बसे है वे उजड़ते
है प्रकृति के जड़ नियम से,
पर किसी उजड़े हुए को
फिर बसाना कब मना है?
है अँधेरी रात, पर
दीवा जलाना कब मना है ?

निर्माण

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर!

(१)

वह उठी आँधी कि नभ मे
छा गया सहसा अँधेरा,

धूलि धूसर बादलों ने
भूमि को इस भाँति घेरा,
रात-सा दिन हो गया, फिर
रात आई और काली,
लग रहा था अब न होगा
इस निशा का फिर सवेरा,
रात के उत्पात-भय से
भीत जन-जन, भीत कण-कण,
किन्तु प्राची से उषा की
मोहिनी मुसकान फिर-फिर!
नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर!

(२)

वह चले झोंके कि काँपे
भीम कायावान भूधर,
जड़ समेत उखड़-पुखड़कर
गिर पड़े, टूटे विटप वर,
हाय, तिनकों से विनिर्मित
घोंसलों पर क्या न बीती,
डगमगाए जबकि कंकड़,
ईंट, पत्थर के महल-घर;
बोल आशा के विहंगम,
किस जगह पर तू छिपा था,
जो गगन पर चढ़ उठाता
गर्व से निज तान फिर-फिर!

नीड़ का निर्माण फिर-फिर,
नेह का आह्वान फिर-फिर!

(३)

क्रुद्ध नभ के वज्र दंतों
में उषा है मुसकराती,
घोर गर्जनमय गगन के
कंठ में खग-पंक्ति गाती;
एक चिड़िया चोंच में तिनका
लिए जो जा रही है,
वह सहज में ही पवन
उंचास को नीचा दिखाती!
नाश के दुख से कभी
दबता नहीं निर्माण का सुख
प्रलय की निस्तब्धता से
सृष्टि का नवगान फिर-फिर!
नीड़ का निर्माण फिर-फिर!
नेह का आह्वान फिर-फिर!

स्वप्न भी छल, जागरण भी!

भूत केवल जल्पना है,
औ' भविष्यत कल्पना है,
वर्तमान लकीर भ्रम की! और है चौथी शरण भी?
स्वप्न भी छल, जागरण भी!

मनुज के अधिकार कैसे !
हम यहाँ लाचार ऐसे,
कर नही इन्कार सकते, कर नहीं सकते वरण भी !
स्वप्न भी छल, जागरण भी !

जानता यह भी नहीं मन—
कौन मेरी थाम गर्दन
है विवश करता कि कह दूँ, व्यर्थ जीवन भी, मरण भी !
स्वप्न भी छल, जागरण भी !

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

आपका जन्म सन् १९१५ में हुआ और आपने लखनऊ तथा नागपुर विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की। इस समय आप शासकीय महाकोशल कला महाविद्यालय के प्राचार्य, जबलपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी एवं भाषा शास्त्र विभाग के अध्यक्ष और कला संकाय के अधिष्ठाता हैं। इसके पूर्व आप रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर में भी इन्हीं पदों पर रह चुके हैं। पिछले २७ वर्षों से आप हिन्दी अध्यापन कार्य में रत है और मध्यप्रदेश में ही आपका यह सम्पूर्ण समय व्यतीत हुआ है।

छायावादोत्तर हिन्दी कविता के आप एक अग्रणी कवि माने जाते हैं। हिन्दी कविता के छायावाद की जटिल अस्पष्टता और कोरी काल्पनिकता से निकालकर आपने उसे ठोस पार्थिव जीवन-भूमि पर स्थापित किया है। भाव, भाषा, अनुभूति-प्रकाशन, प्रतीक-योजना और शिल्प-विधान—सभी दृष्टियों से अंचल ने छायावाद के विरुद्ध विद्रोह का नेतृत्व किया है। इन्हें प्रमुख रूप से प्रगतिवाद का कवि माना गया है क्योंकि इन्होंने सामाजिक संघर्ष और जनानुभवों के सशक्त भावोद्दीप्त चित्र अपनी कविता में अंकित किये हैं। यही नहीं इन्होंने जीवन की कुरूपता, श्रेणीगत वैषम्य और वर्गजन्य शोषण के सामाजिक और आर्थिक कारणों पर भी अपने काव्य में प्रकाश डाला है। साथ ही इनके काव्य में जीवन के सौन्दर्य का विषद चित्रण भी मिलता है। जीवन और जगत के प्रति अटूट आस्था, तीव्र अन्तरानुभूति, मार्मिक भाव, प्रखर प्रवाहमयी भाषा और सौन्दर्य की भव्यता के प्रति अथाह आकर्षण और विश्वास इनकी कविता के प्रमुख गुण हैं। ओज और माधुर्य का अद्भुत योग इनके काव्य में मिलता है। शैली और छन्द शिल्प सौष्ठव और रूप-विधान इन सब में कवि ने बराबर नये-नये सार्थक प्रयोग किये हैं। और इस प्रकार हिन्दी कविता को नये-नये सुषमा-संस्कारों

और सौन्दर्य-सरणियों से सुसज्जित किया है। यदि अपने सामाजिक अनुभवों को लेकर चलनेवाली कविताओं में ये उग्र यथार्थवादी हैं तो एक नूतन सामाजिक आदर्श और जीवन-दर्शन के उद्‌भावक भी हैं। ये सच्चे अर्थ में स्वच्छन्दतावाद के कवि हैं और प्रेमानुभूति का अत्यन्त उज्ज्वल देदीप्यमान रूप इनकी कविता में मिलता है। प्राथमिका, किरणवेला, करील, वर्षान्त के वादल, विराम चिह्न, प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी और अनुपूर्वा आपके काव्य-संग्रह हैं। जो अनेक दशकों की हिन्दी कविता का प्रतिनिधित्व करते हैं। हिन्दी के सर्वाधिक और चरम चर्चित कवियों में ये भी एक हैं, जिनके काव्य को लेकर विविध प्रकार की मान्यताओं और आलोचनात्मक निष्कर्ष का प्रकाशन पिछले सम्पूर्ण छायावादोत्तर युग में होता रहा है। वादों की सीमा में न बंधकर इनका कवि सदैव गीतिधर्मी और रस-प्राण रहा है। ये कवि ही नहीं आलोचक और उपन्यासकार भी हैं। इनके उपन्यास अपनी रोचकता, चरित्र-चित्रण, जीवन-दृष्टि और विचारणा के लिए प्रसिद्धि पा चुके हैं। चढ़ती धूप, नई इमारत, उल्का और मरु-प्रदीप आपके उपन्यास हैं जिनमें भाषा के वेग और भावनाओं की हलचल के साथ स्वच्छन्दतावाद, यथार्थवाद और राष्ट्रीय ओज का सुखद सम्मिश्रण हुआ है।

मैं अप्रस्तुत चू पड़ा हूँ...

जुड़ न पाया था अभी तक अर्चना के तार मे
मैं अप्रस्तुत चू पड़ा हूँ फिर तुम्हारी धार मे
टूट लहरों की अजानी घाटियो मे अधबनी
छूटती जाती पवन की कूलगर्धी रागिनी।
कँपकँपा कर छूटती पीछे खड़ी नावे नयी
धूप मे उलटी टँगी गुमसुम दिशाये जलमयी।

कल अभी कल ही उगा था अर्धजन्मे भोर में
चू पड़ा किस दूर अनदेखे खिंचे जल छोर में।
जब उमड़ आये कपासी रात के क्षण आखिरी
गदगीली बौरती तरुपाँत ऋतु की लवभरी।
सूख पाया था न केशर के हरे नीहार में,
मैं अप्रस्तुत चू पड़ा हूँ फिर तुम्हारी धार मे।
रह गये पीछे बिलखते वृन्त के संवाद सब
स्वप्न जैसी झिलमिली तरु-कोपलों की याद सब।
थी अधूरी ही सुरभि के कम्प की भीनी कड़ी
गूँजती वनपाखियों की जामुनी नीली लड़ी।
तुम सहेजो यह चुवन का सुख समय के स्रोत ओ!
तुम नियति मेरी सँवारो व्यास के परिप्रोत ओ!
अनजपे अनुभूत अफलित अर्थ को आकाश दो
ओ प्रवाहित पूर्ण! स्वीकृति का सहज विश्वास दो।
श्रुति न बनने दो मुझे चाहे अगम अभिसार में
मैं अप्रस्तुत चू पड़ा हूँ फिर तुम्हारी धार में।
साथ चलता है घिरा आवर्त फेनों का डसा
दूर तक डूबे क्षितिज के पार सूरज चल बसा।
इस अराजक स्तब्धता का टूटता वया है सरल
पख-टूटी छाँह सी जल-श्रेणियाँ फैली विरल।
मै न बीतूँगा तुम्हें ओ नील स्थिरता के अधर
ओ अबाध अथाह! तुमको जागता हूँ मै प्रखर
तुम मुझे अर्पित असमोहित का अबूझा भाव दो।
डाल छूती आस्था को गीत का फैलाव दो।
आयु से आगे धसूँ मै अनगहे आधार में
मै अप्रस्तुत चू,पड़ा हूँ फिर तुम्हारी धार मे।

भरमाते हो नाव तुम्हीं अन्धड़ में तूफानो में
तुम्हीं शक्ति भरते छाती मे, स्वर भरते गानो में
ज्वार उठा जाते हो जीवन की तरंगमाला मे
सौ-सौ जीभे फैलाये लहरे उठती ज्वाला मे।

यह झञा लोड़ित गर्जित मँझधार तुम्हारा ही तो
मेरे साहस का गीत था अम्बार तुम्हारा ही तो
तूफानी झञा मे दो पतवार न कभी रुकेंगे।
नौका लहरो से टकराये पाल न कभी झुकेगे!!

उतना तुम पर विश्वास बढ़ा

जितनी तुमने व्याकुलता दी उतना तुम पर विश्वास बढ़ा।

(१)

बाहर के आँधी-पानी से मन के तूफान कहीं बढ़कर,
बाहर के सब आघातों से, मन के अवसान कही बढ़कर,
फिर भी मेरे मरते मन ने तुम तक उड़ने की गति चाही,
तुम अपनी लौ से मेरे सपनों की चचलता दाही,
इस अनदेखी लौ ने मेरी वुझती पूजा में रुप मढ़ा,
जितनी तुमने व्याकुलता दी उतना तुम पर विश्वास बढ़ा।

(२)

प्राणों मे उमड़ी थी कितने अनगाये गीतों का हलचल,
जो वह न सके थे वह आँसू भीतर-भीतर थे तप्त विकल,
रुकते रुकते ही सीख गये वे सुधि के सुमिरन में वहना,
तुम जान सकोगे क्या न कभी मेरे अर्पित मन का सहना,

तुमने सब दिन असफलता दी मैंने उसमें वरदान पढ़ा,
जितनी तुमने व्याकुलता दी उतना तुम पर विश्वास बढ़ा।

(३)

मैंने चाहा तुम में लय हो साँसों के स्वर सा खो जाना,
मैं प्रतिक्षण तुममें ही बीतूँ—हो पूर्ण समर्पण का बाना,
तुमने क्या जाने क्या करके मुझको भँवरों में भरमाया,
मैंने अगणित मँझधारों में तुमको साकार खड़ा पाया,
भयंकारी लहरों में भी तो तुम तक आने का चाव चढ़ा,
जितनी तुमने व्याकुलता दी उतना तुम पर विश्वास बढ़ा।

(४)

मेरे मन को आधार यही, यह सब कुछ तुम ही देते हो,
दुख में तन्मयता देकर तुम सुख की मदिरा हर लेते हो,
मैंने सारे अभिमान तजे लेकिन न तुम्हारा गर्व गया,
संचार तुम्हारी करुणा का मेरे मन में है नित्य नया,
मैंने इतनी दूरी मे भी तुम तक आने का स्वप्न गढ़ा,
जितनी तुमने व्याकुलता दी उतना तुम पर विश्वास बढ़ा।

(५)

मुझको न मिलन की आशा है अनुमान तुम्हें मैं कितना लूँ
मन में बस एक पिपासा है पहचान तुम्हें मैं कितना लूँ,
जो साध न पूरी हो पाई उसमें ही तुम मँडराते हो,
जो दीप न अब तक जल पाया उसमें तुम स्नेह सजाते हो;
तुम जितनी दूर रहे तुम पर उतना जीवन का फूल चढ़ा,
जितनी तुमने व्याकुलता दी उतना तुम पर विश्वास बढ़ा।

(६)

आभास तुम्हारी महिमा का कर देता है पूजा मुश्किल,
परिपूर्ण तुम्हारी वत्सलता करती मन की निष्ठा मुश्किल,
मैं सब कुछ तुममें ही देखूं सब कुछ तुममें ही हो अनुभव,
मेरा दुर्बल मन किन्तु कहाँ होने देता यह सुख सम्भव,
जितनी तन की धरती डूबी उतना मन का आकाश बढ़ा,
जितनी तुमने व्याकुलता दी उतना तुम पर विश्वास बढ़ा।

डा० शिवमंगलसिंह 'सुमन'

आपका जन्म सन् १९१६ ई० में हुआ। आपने काशी विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की।

आपकी गणना प्रगतिवादी कवियों में की जाती है। जीवन के विभिन्न स्तरों और समाज के कुत्सित कुरूप पक्षों का चित्रण आपकी कविता में हुआ है। ओज और प्रसाद आपके काव्य के प्रमुख गुण हैं। आपकी वर्णन शैली सजीव और प्रभावशाली होती है। आपने गीत भी लिखे हैं और कुछ मुक्तक छन्द भी। काव्य पाठ की आपकी रोचक शैली अनूठी है। 'सुमन' जी की कविता में अनुभूति की प्रधानता है, कल्पना की नहीं। यह अनुभूति सामाजिकता और राष्ट्रीयता के प्रति प्रायः सच्ची रहकर उनके काव्य को सरलता और प्रभाववत्ता प्रदान करती है। सरल भाषा और मार्मिक भावों का सुन्दर सुखद संयोग उनकी कविताओं में मिलता है। हिन्दी के लोकप्रिय कवियों में इनकी गणना की जाती है। इस समय आप विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन के कुलपति हैं। इसके पूर्व माधव कालेज उज्जैन के प्राचार्य एवं नेपाल के राजदूतावास में सांस्कृतिक अधिकारी भी रह चुके हैं। प्रलय, सृजन, हिल्लोल, पर आँखें नहीं भरीं, विश्वास बढ़ता ही गया आदि आपके काव्य-संग्रह हैं।

मिट्टी की महिमा

निर्मम कुम्हार की थापी से
कितने रूपों में कुटी-पिटी,
हर बार बिखेरी गई किन्तु
मिट्टी फिर भी तो नहीं मिटी।

आशा में निश्छल पल जाये, छलना में पड़ कर छल जाये,
सूरज दमके तो तप जाये, रजनी ठुमके तो ढल जाये,
यों तो बच्चों की गुड़िया-सी भोली मिट्टी की हस्ती क्या,
आँधी आवे तो उड़ जाये, पानी बरसे तो गल जाये,
फसलें उगतीं, फसलें कटती, लेकिन धरती चिर उर्वर है,
सौ बार बने सौ बार मिटे लेकिन मिट्टी अविनश्वर है।
मिट्टी गल जाती पर उसका विश्वास अमर हो जाता है॥

विरचे शिव, विष्णु, विरंचि विपुल
अगणित ब्रह्माण्ड हिलाये हैं,
पलने में प्रलय झुलाया है
गोदी में कल्प खिलाये हैं।

रो दे तो पतझर आ जाये, हँस दे तो मधुऋतु छा जाये,
झूमे तो नन्दन झूम उठे, थिरके तो ताण्डव शरमाये,
यों मदिरालय के प्याले-सी मिट्टी की मोहक मस्ती क्या,
अधरों को छूकर सकुचाये, ठोकर लग जाये, छहराये,
उन्चास मेघ, उन्चास पवन, अम्बर-अवनी कर देते सम,
वर्षा थमती, आँधी रुकती, मिट्टी हँसती रहती हरदम,
कोयल उड़ जाती पर उसका निश्वास अमर हो जाता है।

मिट्टी की महिमा मिटने में
मिट मिट हर बार सँवरती है,
मिट्टी मिट्टी पर मिटती है—
मिट्टी मिट्टी को रचती है।

मिट्टी में स्वर है, संयम है, होनी अनहोनी कह जाये,
हँस कर हालाहल पी जाये, छाती पर सब कुछ सह जाये,

यों तो तारों के महलों-सी मिट्टी की वैभव बस्ती क्या,
आँधी आये तो उड़ जाये, भूकम्प उठे तो ढह जाये,
लेकिन मानव का फूल खिला जब से पाकर वाणी का वर,
विधि का विधान लुट गया स्वर्ग-अपवर्ग हो गये न्यौछावर।
कवि मिट जाता, लेकिन उसका उच्छ्‌वास अमर हो जाता है,
मिट्टी गल जाती, पर उसका विश्वास अमर हो जाता है।

मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला

घर-आँगन सब आग लग रही
सुलग रहे वन-उपवन
दर-दीवारें चटख रही है
जलते छप्पर-छाजन
तन जलता है, मन जलता है
जलता जन-धन-जीवन
एक नहीं जलते सदियों से
जकड़े गर्हित बन्धन

दूर बैठकर ताप रहा है, आग लगाने वाला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला।

भाई की गरदन पर
भाई का तन गया दुधारा
सब झगड़े की जड़ है
पुरखों के घर का बँटवारा
एक अकड़ कर कहता
अपने मन का हक ले लेंगे

और दूसरा कहता
तिल भर भूमि न बँटने देंगे

पंच बना बैठा है घर में, फूट डालने वाला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला।

दोनों के नेतागण बनते
अधिकारों के हामी
किन्तु एक दिन को भी
हमको अखरी नहीं गुलामी
दानों को मोहताज हो गए
दर दर बने भिखारी
भूख, अकाल, महामारी से
दोनों की लाचारी

आज धार्मिक बना, धर्म का नाम मिटाने वाला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला।

होकर बड़े लड़ेंगे यों
यदि कहीं जान मैं लेती
कुल - कलंक - संतान
सौर में गला घोंट मैं देती
लोग निपूती कहते पर
यह दिन न देखना पड़ता
मैं न बंधनों में सड़ती
छाती में शूल न गड़ता

बैठी यहीं बिसूर रही मां, नीचों ने घर घाला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला।

भगतसिंह, अशफाक
लालमोहन, गणेश बलिदानी
सोच रहे होगे, हम सबकी
व्यर्थ गई कुरबानी
जिस धरती को तन की
देकर खाद, खून से सींचा
अंकुर लेते समय, उसी पर
किसने जहर उलीचा

हरी भरी खेती पर ओले गिरे, पड़ गया पाला
मेरा देश जल रहा, कोई नही बुझाने वाला।

जब भूखा बंगाल, तड़प
मर गया ठोक कर किस्मत
बीच हाट में बिकी
तुम्हारी मां बहनों की अस्मत
जब कुत्तों की मौत मर गए
बिलख बिलख नर-नारी
कहां गई थी भाग उस समय
मरदानगी तुम्हारी

तब अन्यायी का गढ़ तुमने क्यों न चूर कर डाला
मेरा देश जल रहा, कोई नही बुझाने वाला।

पुरखों का अभिमान तुम्हारा
और वीरता देखी
राम-मुहम्मद की संतानों
व्यर्थ न मारो शेखी

सर्वनाश की लपटों में
सुख-शांति झोंकने वालों
भोले बच्चों, अबलाओं के
छुरा भोंकने वालों

ऐसी बर्बरता का इतिहासों में नहीं हवाला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला।

घर घर मां की कलख
पिता की आह, बहन का क्रंदन
हाय, दुधमुँहे बच्चे भी
हो गए तुम्हारे दुश्मन?
इस दिन की खातिर ही थी
शमशीर तुम्हारी प्यासी?
मुँह दिखलाने योग्य कहीं भी
रहे न भारतवासी।

हँसते हैं सब देख गुलामों का यह ढंग निराला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला।

जाति - धर्म-गृह - हीन
युगों का नंगा-भूखा - प्यासा
आज सर्वहारा तू ही है
एक हमारी आशा
ये छल - छंद शोषकों के हैं
कुत्सित, ओछे, गन्दे
तेरा खून चूसने को ही
ये दंगों के फन्दे

तेरा एका, गुमराहों को राह दिखाने वाला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला।

मैं मनुष्य के भविष्य से नहीं निराश

(१)

चिर-अनादि चिर-अनन्त की परम्परा
मेघ घिर रहे हैं क्योंकि उर्वरा धरा,
आज पूर्ण चन्द्र-बिम्ब राहु-ग्रस्त है
थरथरा रहा है किन्तु तुम घिरा-घिरा
जिन्दगी कही महान चाह-दाह से
चिर विकासशील जन्मजात अश्रु-हास।

(२)

आज आसुरी बनी समस्त सभ्यता
गिर पड़ा तुषार लुट गई लता-लता,
छिन्न-भिन्न सी ममत्व-सत्व-शृंखला
खो गई कहीं मनुष्य की मनुष्यता!
मरु-प्रसार सी हरी-भरी वसुंधरा
बीज शेष किन्तु, विश्ववट नहीं उदास।

(३)

एक बीज में निहित असंख्य वन-वितान,
एक बिन्दु में निहित असंख्य सिन्धु-गान,
देश-जाति-धर्म-वर्ग बांध बांध कर
एक ही हृदय विराट में प्रकम्पमान

प्रेरणा यद्यपि पाश्चात्य साहित्य धारा से ग्रहीत हुई है परन्तु उसमें भारतीय जीवन, चरित्र, स्वभाव और सामाजिकता के भी स्वाभाविक चित्र उभरे हैं। इनकी अन्य रचनाओं के नाम है भग्नदूत, चिन्ता, इत्यलम्, हरीघास पर क्षणभर, बावरा, अहेरी, इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, आंगन के पार द्वार, सुनहले शैवाल जो सब काव्य-संग्रह हैं। विपथगा, परस्परा, कोठरी की बात, शरणार्थी और जयदोल आपके कहानी संग्रह हैं। आपके आलोचनात्मक निबंध त्रिशंकु और आत्मनेय पद में संकलित है।

नदी के द्वीप

हम नदी के द्वीप है।
हम नही कहते कि हम को छोड़कर स्रोतस्विनी वह जाय।
वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण, गलियाँ, अन्तरीप, उभार, सैंकत कूल,
सब गोलाइयाँ उसकी गढ़ी है।
माँ है वह। है, इसी से हम बने हैं।
किन्तु हम है द्वीप।
हम धारा नही है।
स्थिर समर्पण है हमारा। हम सदा से द्वीप है स्रोतस्विनी के।
किन्तु हम वहते नही है। क्योंकि वहना रेत होना है।
हम वहेंगे तो रहेंगे ही नही।
पैर उखड़ेगे। प्लवन होगा। ढहेगे। सहेंगे! वह जायेगे।
और फिर हम चूर्ण होकर भी कभी क्या धार वन सकते?
रेत वन कर हम सलिल को तनिक गँदला ही करेगे।
अनुपयोगी ही वनायेगे।
द्वीप है हम,

यह नहीं है शाप। यह अपनी नियति है।
हम नदी के पुत्र है। बैठे नदी के क्रोड़ में।
वह वृहद् भूखण्ड से हमको मिलाती है।
और वह भूखण्ड
अपना पितर है।
नदी, तुम बहती चलो।
भू खण्ड से जो दाय हमको मिला है, मिलता रहा है,
माँजती, संस्कार देती चलो :
यदि ऐसा कभी हो
तुम्हारे आह्लाद से या दूसरो के किसी स्वैराचार से—
अतिचार से—
तुम बढ़ो, प्लावन तुम्हारा घरघराता उठे—
यह स्रोतस्विनी ही कर्मनाशा कीर्तिनाशा घोर
काल-प्रवाहिनी बन जाय
तो हमें स्वीकार है वह भी। उसी में रेत होकर
फिर छनेगे हम। जमेंगे हम। कहीं फिर पैर टेकेंगे।
कहीं फिर भी खड़ा होगा नये व्यक्तित्व का आकार।
मातः उसे फिर संस्कार तुम देना।

साँप

साँप !
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछूँ—(उत्तर दोगे ?)

तब कैसे सीखा डँसना
विष कहाँ पाया?

नये कवि के प्रति

किसी का सत्य था,
मैंने संदर्भ में जोड़ दिया।
कोई मधु-कोष काट लाया था,
मैंने निचोड़ लिया।
किसी की उक्ति में गरिमा थी
मैंने उसे थोड़ा-सा सँवार दिया,
किसी की संवेदना में आग का-सा ताप था
मैंने दूर हटते हटते उसे धिक्कार दिया।
कोई हुनरमन्द था :
मैंने देखा और कहा 'यों'!
थका भारवाही पाया—
घुड़का या कोंच दिया 'क्यों'?
किसी की पौध थी,
मैंने सींची और बढ़ने पर अपना ली,
किसी की लगाई लता थी,
मैंने दो बल्ली गाड़ उसी पर छवा ली।
किसी की कली थी,
मैंने अनदेखे में बीन ली;
किसी की बात थी
मैंने मुँह से छीन ली।
यों मैं कवि हूँ, आधुनिक हूँ, नया हूँ;

काव्य-तत्व की खोज में कहाँ नही गया हूँ ?
चाहता हूँ आप मुझे
एक-एक शब्द पर सराहते हुए पढ़ें।
पर प्रतिमा—अरे वह तो
जैसी आपको रुचे आप स्वयं गढ़ें।

धर्मवीर भारती

आपका जन्म सन् १९२६ ई० में इलाहाबाद में हुआ। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्ययन समाप्त कर आप अनेक वर्षों तक वहां हिन्दी के अध्यापक रहे। परन्तु पत्रकारिता में आरंभ से ही विशेष रुचि रखने के कारण आपने हिन्दी के प्रसिद्ध साप्ताहिक धर्मयुग का संपादन भार स्वीकार किया और लगभग पिछले १६ वर्षों से हिन्दी के इस सर्वाधिक लोकप्रिय साप्ताहिक का कुशलतापूर्वक सम्पादन कर रहे है। विश्वविद्यालय में अध्यापन करते हुए भी आपने आलोचना तथा निकष जैसे पत्रों का सम्पादन किया था।

नई पीढ़ी के सर्वाधिक सशक्त कवियों—लेखकों में भारती की गणना होती है। उपन्यास लेखक, एकांकीकार और विविध प्रकार के निबन्ध लेखक के रूप में भारती की ख्याति है। गीतकार के रूप में काव्य प्रणयन आरंभ कर आप अपनी नवीनता और प्रयोगशीलता के कारण नये कवियों में परिगणित होने लगे। आपकी कविताओं में आधुनिक युग के संघर्षशील जीवन की सहज अभिव्यक्ति के साथ बौद्धिकता का भी समावेश पाया जाता है। भारती ने विश्व की प्रायः समस्त भाषाओं के काव्य का गम्भीर अध्ययन किया है और उनके द्वारा रचित देशान्तर (विदेशी कविताओं के अनुवाद का संकलन) हिन्दी में अपने ढंग की अनूठी कृति है।

भारती को काव्य शिल्प, भाव-प्रवणता और अनुभूति बोध की दृष्टि से नवीनतावादी मानने पर भी मूल रूप से रसधर्मी कवि कहा जा सकता है। प्रेम, शृंगार, करुणा और जीवन के अभिशप्त विघटन के सच्चे चितेरे इस कवि ने काव्य के सहज गुणों को अपनी रचनाओं में सदैव अक्षुण्ण रखा है। अपनी अन्धा-युग जैसी कृति में भी कवि ने वैचारिक धरातल के साथ रसधर्म का भी सम्यक निर्वाह किया है। गुनाहों का देवता और सूरज का सातवां घोड़ा भारती के प्रसिद्ध उपन्यास हैं और उनकी कहानियों, एकांकी नाटकों और यात्रा विवरणों

के अनेक संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी व्यंग प्रधान शैली प्रेरणा की स्वाभाविकता और भावानुभावों के निश्छल प्रकाशन के कारण पाठक के मन को प्रभावित करती है।

सृजन की थकन

सृजन की थकन भूल जा देवता!
अभी तो पड़ी है धरा अनबनी,
अभी तो पलक में नहीं खिल सकी
नवल कल्पना की मृदुल चांदनी,
अभी अधखिली ज्योत्स्ना की कली
नहीं जिन्दगी की सुरभि में सनी!
अभी तो पड़ी है धरा अनबनी,
अधूरी धरा पर नही है कहीं
अभी स्वर्ग की नींद का भी पता!
सृजन की थकन भूल जा देवता!
रुका तू, गया रुक जगत का सृजन,
तिमिरमय नयन में डगर भूलकर
कही खो गई रोशनी की किरन
अलस बादलों में कही सो गया
नई सृष्टि का सात-रंगी सपन
रुका तू, गया रुक जगत का सृजन,
अधूरे सृजन से निराशा भला
किसलिये जब अधूरी स्वयं पूर्णता?
सृजन की थकन भूल जा देवता!
प्रलय से निराशा तुझे हो गई!

सिसकती हुई साँस की जालियों में
सबल प्राण की अर्चना खो गई
थके बाहुओं मे अधूरी प्रलय
औ' अधूरी सृजन योजना खो गई
थकन से निराशा तुझे हो गई?
इसी ध्वंस में मूर्च्छित सी कहीं
पड़ी हो नई जिन्दगी, क्या पता?
सृजन की थकन भूल जा देवता!

टूटा पहिया

मैं
रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत!
क्या जाने कब
इस दुरूह चक्रव्यूह में
अक्षौहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ
कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आकर घिर जाय!
अपने पक्ष को असत्य जानते हुए भी
बड़े-बड़े महारथी
अकेली निहत्थी आवाज को
अपने ब्रह्मास्त्रों से कुचल देना चाहें
तब मैं
रथ का टूटा हुआ पहिया
उसके हाथों में
ब्रह्मास्त्रों से लोहा ले सकता हूँ!

मैं रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत
इतिहासों की सामूहिक गति !
सहसा झूठी पड़ जाने पर
क्या जाने
सच्चाई टूटे हुए पहियों का आश्रय ले।

सेतु मैं

नीचे की घाटी से
ऊपर के शिखरों पर
जिसको जाना था वह चला गया—
हाय मुझी पर पग रख
मेरी बाहों से
इतिहास तुम्हें ले गया !
सुनो कनु सुनो
क्या मैं सिर्फ एक सेतु थी तुम्हारे लिये
लीला भूमि और युद्ध-क्षेत्र के
अलंघ्य अन्तराल में।
अब इन सूने शिखरों, मृत्यु-घाटियों में बने
सोने के पतले गुँथे तारों वाले पुल सा
निर्जन
निरर्थक
काँपता सा, यहाँ छूट गया—मेरा यह सेतु-जिस्म
—जिसको जाना था वह चला गया !